उत्तरार्द्धः

अथैकादशसमुल्लासारम्भः

अथाऽऽर्य्यावर्त्तीयमतखण्डनमण्डने विधास्यामः

अब आर्य्य लोगों के कि जो आर्य्यावर्त्त देश में वसने वाले हैं उन के मत का खण्डन तथा मण्डन का विधान करेंगे। यह आर्य्यावर्त्त देश ऐसा देश है जिसके सदृश भूगोल में दूसरा कोई देश नहीं है। इसीलिये इस भूमि का नाम सुवर्णभूमि है क्योंकि यही सुवर्णादि रत्नों को उत्पन्न करती है। इसीलिये सृष्टि की आदि में आर्य्य लोग इसी देश में आकर बसे। इसलिए हम सृष्टिविषय में कह आये हैं कि आर्य्य नाम उत्तम पुरुषों का है और आर्य्यों से भिन्न मनुष्यों का नाम दस्यु है। जितने भूगोल में देश हैं वे सब इसी देश की प्रशंसा करते और आशा रखते हैं कि पारसमणि पत्थर सुना जाता है वह बात तो झूठी है परन्तु आर्य्यावर्त्त देश ही सच्चा **पारसमणि** है कि जिस को लोहेरूप दरिद्र विदेशी छूते के साथ ही सुवर्ण अर्थात् धनाढ्य हो जाते हैं ।

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशाद् अग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥ मनु०॥

सृष्टि से ले के पांच सहस्र वर्षों से पूर्व समय पर्यन्त आर्यों का सार्वभौम चक्रवर्ती अर्थात् भूगोल में सर्वोपरि एकमात्र राज्य था। अन्य देशों में माण्डलिक अर्थात् छोटे-छोटे राजा रहते थे क्योंकि कौरव पाण्डव पर्यन्त यहां के राज्य और राजशासन में सब भूगोल के सब राजा और प्रजा चले थे क्योंकि यह **मनुस्मृति जो सृष्टि की आदि में हुई है** उस का प्रमाण है । इसी आर्य्यावर्त्त देश में उत्पन्न हुए ब्राह्मण अर्थात् विद्वानों से भूगोल के मनुष्य ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, दस्यु, म्लेच्छ आदि सब अपने-अपने योग्य विद्या चरित्रों की शिक्षा और विद्याभ्यास करें। और महाराजा युधिष्ठिर जी के राजसूय यज्ञ और महाभारत युद्धपर्यन्त यहां के राज्याधीन सब राज्य थे ।

सुनो! चीन का भगदत्त, अमेरिका का बब्रुवाहन, यूरोपदेश का विडालाक्ष अर्थात् मार्जार के सदृश आंखवाले, यवन जिस को यूनान कह आये और ईरान का शल्य आदि सब राजा राजसूय यज्ञ और महाभारत युद्ध में सब आज्ञानुसार आये थे। जब रघुगण राजा थे तब रावण भी यहां के आधीन था। जब रामचन्द्र के समय में विरुद्ध हो गया तो उस को रामचन्द्र ने दण्ड देकर राज्य से नष्ट कर उस के भाई विभीषण को राज्य दिया था ।

स्वायम्भुव राजा से लेकर पाण्डवपर्यन्त आर्य्यों का चक्रवर्ती राज्य रहा। तत्पश्चात् आपस के विरोध से लड़ कर नष्ट हो गये क्योंकि इस परमात्मा की सृष्टि में अभिमानी, अन्यायकारी, अविद्वान् लोगों का राज्य बहुत दिन तक नहीं चलता। और यह संसार की स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि जब बहुत सा धन असंख्य प्रयोजन से अधिक होता है तब आलस्य, पुरुषार्थरहितता; ईर्ष्या, द्वेष, विषयासक्ति और प्रमाद बढ़ता है। इस से देश में विद्या सुशिक्षा नष्ट हो कर दुर्गुण और दुष्ट व्यसन बढ़ जाते हैं। जैसे कि मद्य-मांससेवन, बाल्यावस्था में विवाह और स्वेच्छाचारादि दोष बढ़ जाते हैं। और जब युद्धविभाग में युद्धविद्याकौशल और सेना

इतनी बढ़े कि जिस का सामना करने वाला भूगोल में दूसरा न हो तब उन लोगों में पक्षपात अभिमान बढ़ कर अन्याय बढ़ जाता है। जब ये दोष हो जाते हैं तब आपस में विरोध हो कर अथवा उन से अधिक दूसरे छोटे कुलों में से कोई ऐसा समर्थ पुरुष खड़ा होता है कि उन का पराजय करने में समर्थ होवे। जैसे मुसलमानों की बादशाही के सामने शिवा जी, गोविन्दसिंह जी ने खड़े होकर मुसलमानों के राज्य को छिन्न-भिन्न कर दिया।

अथ किमेतैर्वा परेऽन्ये महाधनुर्धराश्चक्रवर्तिनः केचित् सुद्युम्न-भूरिद्युम्नेन्द्रद्युम्नकुवलयाश्वयौवनाश्ववद्ध्र्यश्वाश्वपतिशशविन्दुहरिश्चन्द्राऽम्बरीष-ननक्तुशर्यातिययात्यनरण्याक्षसेनादयः। अथ मरुत्तभरतप्रभृतयो राजानः॥ -मैत्र्युपनि०

इत्यादि प्रमाणों से सिद्ध है कि सृष्टि से लेकर महाभारतपर्यन्त चक्रवर्ती सार्वभौम राजा आर्य्यकुल में ही हुए थे। अब इनके सन्तानों का अभाग्योदय होने से राजभ्रष्ट होकर विदेशियों के पादाक्रान्त हो रहे हैं। जैसे यहां सुद्युम्न, भूरिद्युम्न, इन्द्रद्युम्न, कुवलयाश्व, यौवनाश्व, वद्ध्र्यश्व, अश्वपति, शशविन्दु, हरिश्चन्द्र, अम्बरीष, ननक्तु, शर्याति, ययाति, अनरण्य, अक्षसेन, मरुत्त और भरत सार्वभौम सब भूमि में प्रसिद्ध चक्रवर्ती राजाओं के नाम लिखे हैं वैसे स्वायम्भुवादि चक्रवर्ती राजाओं के नाम स्पष्ट मनुस्मृति, महाभारतादि ग्रन्थों में लिखे हैं। इस को मिथ्या करना अज्ञानी और पक्षपातियों का काम है।

(प्रश्न) जो आग्नेयास्त्र आदि विद्या लिखी हैं वे सत्य हैं वा नहीं? और तोप तथा बन्दूक तो उस समय में थीं वा नहीं?

(उत्तर) यह बात सच्ची है। ये शस्त्र भी थे, क्योंकि पदार्थविद्या से इन सब बातों का सम्भव है।

(प्रश्न) क्या ये देवताओं के मन्त्रों से सिद्ध होते थे?

(उत्तर) नहीं। ये सब बातें जिन से अस्त्र शस्त्रों को सिद्ध करते थे वे 'मन्त्र' अर्थात् विचार से सिद्ध करते और चलाते थे। और जो मन्त्र अर्थात् शब्दमय होता है उस से कोई द्रव्य उत्पन्न नहीं होता। और जो कोई कहे कि मन्त्र से अग्नि उत्पन्न होता है तो वह मन्त्र के जप करने वाले के हृदय और जिह्वा को भस्म कर देवे। मारने जाय शत्रु को और मर रहे आप। इसलिये मन्त्र नाम है विचार का जैसा 'राजमन्त्री' अर्थात् राजकर्मों का विचार करने वाला कहाता है, वैसा मन्त्र अर्थात् विचार से सब सृष्टि के पदार्थों का प्रथम ज्ञान और पश्चात् क्रिया करने से अनेक प्रकार के पदार्थ और क्रियाकौशल उत्पन्न होते हैं।

जैसे कोई एक लोहे का बाण वा गोला बनाकर उस में ऐसे पदार्थ रक्खे कि जो अग्नि के लगाने से वायु में धुआं फैलने और सूर्य की किरण वा वायु के स्पर्श होने से अग्नि जल उठे इसी का नाम 'आग्नेयास्त्र' है। जब दूसरा इस का निवारण करना चाहै तो उसी पर 'वारुणास्त्र छोड़ दे। अर्थात् जैसे शत्रु ने शत्रु की सेना पर आग्नेयास्त्र छोड़कर नष्ट करना चाहा वैसे ही अपनी सेना की रक्षार्थ सेनापति वारुणास्त्र से आग्नेयास्त्र का निवारण करे। वह ऐसे द्रव्यों के योग से होता है जिस का धुआं वायु के स्पर्श होते ही बद्दल होके झट वर्षने लग जावे; अग्नि को बुझा देवे। ऐसे ही 'नागपाश' अर्थात् जो शत्रु पर छोड़ने से उस के अङ्गों को जकड़ के बांध लेता है। वैसे ही एक 'मोहनास्त्र' अर्थात् जिस में नशे की चीज डालने से जिस के धुएं के लगने से सब शत्रु की सेना निद्रास्थ अर्थात् मूर्छित हो

जाय। इसी प्रकार सब शस्त्रास्त्र होते थे। और एक तार से वा शीसे से अथवा किसी और पदार्थ से विद्युत् उत्पन्न करके शत्रुओं का नाश करते थे उसको भी 'आग्नेयास्त्र' तथा 'पाशुपतास्त्र' कहते हैं।

'तोप' और 'बन्दूक' ये नाम अन्य देशभाषा के हैं। संस्कृत और आर्य्यावर्त्तीय भाषा के नहीं किन्तु जिस को विदेशी जन तोप कहते हैं संस्कृत और भाषा में उस का नाम 'शतघ्नी' और जिस को बन्दूक कहते हैं उस को संस्कृत और आर्य्यभाषा में 'भुशुण्डी' कहते हैं। जो संस्कृत विद्या को नहीं पढ़े वे भ्रम में पड़ कर कुछ का कुछ लिखते और कुछ का कुछ बकते हैं। उस का बुद्धिमान् लोग प्रमाण नहीं कर सकते। और जितनी विद्या भूगोल में फैली है वह सब आर्य्यावर्त्त देश से मिश्र वालों, उन से यूनानी, उन से रूम और उन से यूरोप देश में, उन से अमेरिका आदि देशों में फैली है। अब तक जितना प्रचार संस्कृत विद्या का आर्य्यावर्त्त देश में है उतना किसी अन्य देश में नहीं। जो लोग कहते हैं कि–जर्मनी देश में संस्कृत विद्या का बहुत प्रचार है और जितना संस्कृत मोक्षमूलर साहब पढ़े हैं उतना कोई नहीं पढ़ा। यह बात कहनेमात्र है क्योंकि **'यस्मिन्देशे द्रुमो नास्ति तत्रैरण्डोऽपि द्रुमायते।'** अर्थात् जिस देश में कोई वृक्ष नहीं होता उस देश में एरण्ड ही को बड़ा वृक्ष मान लेते हैं। वैसे ही यूरोप देश में संस्कृत विद्या का प्रचार न होने से जर्मन लोगों और मोक्षमूलर साहब ने थोड़ा सा पढ़ा वही उस देश के लिये अधिक है। परन्तु आर्य्यावर्त्त देश की ओर देखें तो उन की बहुत न्यून गणना है। क्योंकि मैंने जर्मनी देशनिवासी के एक 'प्रिन्सिपल' के पत्र से जाना कि जर्मनी देश में संस्कृत चिट्ठी का अर्थ करने वाले भी बहुत कम हैं। और मोक्षमूलर साहब के संस्कृत साहित्य और थोड़ी सी वेद की व्याख्या देख कर मुझ को विदित होता है कि मोक्षमूलर साहब ने इधर उधर आर्य्यावर्त्तीय लोगों की की हुई टीका देख कर कुछ-कुछ यथा तथा लिखा है। जैसा कि–

युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः । रोचन्ते रोचना दिवि ॥

इस मन्त्र का अर्थ घोड़ा किया है। इस से तो जो सायणाचार्य्य ने सूर्य्य अर्थ किया है सो अच्छा है। परन्तु इसका ठीक अर्थ परमात्मा है सो मेरी बनाई 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' में देख लीजिये। उस में इस मन्त्र का अर्थ यथार्थ किया है। इतने से जान लीजिये कि जर्मनी देश और मोक्षमूलर साहब में संस्कृत विद्या का कितना पाण्डित्य है।

यह निश्चय है कि जितनी विद्या और मत भूगोल में फैले हैं वे सब आर्य्यावर्त्त देश ही से प्रचरित हुए हैं। देखो! एक गोल्डस्टकर साहब पैरस अर्थात् फ्रांस देश निवासी अपनी 'बायबिल इन इण्डिया' में लिखते हैं कि सब विद्या और भलाइयों का भण्डार आर्य्यावर्त्त देश है और सब विद्या तथा मत इसी देश से फैले हैं। और परमात्मा की प्रार्थना करते हैं कि हे परमेश्वर! जैसी उन्नति आर्य्यावर्त्त देश की पूर्वकाल में थी वैसी ही हमारे देश की कीजिये; लिखते हैं उस ग्रन्थ में देख लो।

तथा 'दाराशिकोह' बादशाह ने भी यही निश्चय किया था कि जैसी पूरी विद्या संस्कृत में है वैसी किसी भाषा में नहीं। वे ऐसा उपनिषदों के भाषान्तर में लिखते हैं कि मैंने अर्बी आदि बहुत सी भाषा पढ़ीं परन्तु मेरे मन का सन्देह छूट कर आनन्द न हुआ । जब संस्कृत देखा और सुना तब निस्सन्देह हो कर मुझ को

बड़ा आनन्द हुआ है।

देखो काशी के 'मानमन्दिर' में शिशुमारचक्र को कि जिस की पूरी रक्षा भी नहीं रही है तो भी कितना उत्तम है जिस में अब तक भी खगोल का बहुत सा वृत्तान्त विदित होता है। जो 'सवाई जयपुराधीश' उस को संभाल और टूटे फूटे को बनवाया करेंगे तो बहुत अच्छा होगा ।

परन्तु ऐसे शिरोमणि देश को महाभारत के युद्ध ने ऐसा धक्का दिया कि अब तक भी यह अपनी पूर्व दशा में नहीं आया । क्योंकि जब भाई को भाई मारने लगे तो नाश होने में क्या सन्देह?

विनाशकाले विपरीतबुद्धिः। —यह किसी कवि का वचन है।

जब नाश होने का समय निकट आता है तब उल्टी बुद्धि होकर उल्टे काम करते हैं। कोई उन को सूधा समझावे तो उलटा मानें और उलटा समझावें उस को सूधी मानें। जब बड़े-बड़े विद्वान्, राजा, महाराजा, ऋषि, महर्षि लोग महाभारत युद्ध में बहुत से मारे गये और बहुत से मर गये तब विद्या और वेदोक्त धर्म का प्रचार नष्ट हो चला। ईर्ष्या, द्वेष, अभिमान, आपस में करने लगे। जो बलवान् हुआ वह देश को दाब कर राजा बन बैठा। वैसे ही सर्वत्र आर्यावर्त्त देश में खण्ड-बण्ड राज्य हो गया। पुनः द्वीपद्वीपान्तर के राज्य की व्यवस्था कौन करे! जब ब्राह्मण लोग विद्याहीन हुए तब क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के अविद्वान् होने में कथा ही क्या कहनी? जो परम्परा से वेदादि शास्त्रों का अर्थसहित पढ़ने का प्रचार था वह भी छूट गया। केवल जीविकार्थ पाठमात्र ब्राह्मण लोग पढ़ते रहे सो पाठमात्र भी क्षत्रिय आदि को न पढ़ाया। क्योंकि जब अविद्वान् हुए गुरु बन गये तब छल, कपट, अधर्म भी उन में बढ़ता चला। ब्राह्मणों ने विचारा कि अपनी जीविका का प्रबन्ध बांधना चाहिये। सम्मति करके यही निश्चय कर क्षत्रिय आदि को उपदेश करने लगे कि हम ही तुम्हारे पूज्यदेव हैं। विना हमारी सेवा किये तुम को स्वर्ग वा मुक्ति न मिलेगी। किन्तु जो तुम हमारी सेवा न करोगे तो घोर नरक में पड़ोगे। जो-जो पूर्ण विद्या वाले धार्मिकों का नाम ब्राह्मण और पूजनीय वेद और ऋषि मुनियों के शास्त्र में लिखा था उन को अपने मूर्ख, विषयी, कपटी, लम्पट, अधर्मियों पर घटा बैठे। भला वे आप्त विद्वानों के लक्षण इन मूर्खों में कब घट सकते हैं ? परन्तु जब क्षत्रियादि यजमान संस्कृत विद्या से अत्यन्त रहित हुए तब उनके सामने जो-जो गप्प मारी सो-सो विचारों ने सब मान ली। तब इन नाममात्र ब्राह्मणों की बन पड़ी। सब को अपने वचन जाल में बांध कर वशीभूत कर लिया और कहने लगे कि—

ब्रह्मवाक्यं जनार्दनः।

अर्थात् जो कुछ ब्राह्मणों के मुख में से वचन निकलता है वह जानो साक्षात् भगवान् के मुख से निकला। जब क्षत्रियादि वर्ण आंख के अन्धे और गांठ के पूरे अर्थात् भीतर विद्या की आंख फूटी हुई और जिन के पास धन पुष्कल है ऐसे-ऐसे चेले मिले। फिर इन व्यर्थ ब्राह्मण नाम वालों को विषयानन्द का उपवन मिल गया। यह भी उन लोगों ने प्रसिद्ध किया कि जो कुछ पृथिवी में उत्तम पदार्थ हैं वे सब ब्राह्मणों के लिये हैं। अर्थात् जो गुण, कर्म, स्वभाव से ब्राह्मणादि वर्णव्यवस्था थी उस को नष्ट कर जन्म पर रक्खी और मृतकपर्यन्त का भी दान यजमानों से लेने लगे। जैसी अपनी इच्छा हुई वैसा करते चले। यहां तक किया कि 'हम भूदेव हैं' हमारी सेवा के विना देवलोक किसी को नहीं मिल सकता। इन से पूछना चाहिये

कि तुम किस लोक में पधारोगे? तुम्हारे काम तो घोर नरक भोगने के हैं; कृमि, कीट, पतङ्गादि बनोगे। तब तो बड़े क्रोधित होकर कहते हैं—हम 'शाप' देंगे तो तुम्हारा नाश हो जायेगा क्योंकि लिखा है—'**ब्रह्मद्रोही विनश्यति**' कि जो ब्राह्मणों से द्रोह करता है उस का नाश हो जाता है। हां! यह बात तो सच्ची है कि जो पूर्ण वेद और परमात्मा को जानने वाले, धर्मात्मा सब जगत् के उपकारक पुरुषों से कोई द्वेष करेगा, वह अवश्य नष्ट होगा। परन्तु जो ब्राह्मण नहीं हों, उन का न ब्राह्मण नाम और न उन की सेवा करनी योग्य है।

(प्रश्न) तो हम कौन हैं?

(उत्तर) तुम पोप हो।

(प्रश्न) पोप किस को कहते हैं?

(उत्तर) उस की सूचना रूमन् भाषा में तो बड़ा और पिता का नाम पोप है परन्तु अब छल कपट से दूसरे को ठग कर अपना प्रयोजन साधने वाले को पोप कहते हैं।

(प्रश्न) हम तो ब्राह्मण और साधु हैं क्योंकि हमारा पिता ब्राह्मण और माता ब्राह्मणी तथा हम अमुक साधु के चेले हैं।

(उत्तर) यह सत्य है परन्तु सुनो भाई! माँ बाप ब्राह्मण होने से और किसी साधु के शिष्य होने पर ब्राह्मण वा साधु नहीं हो सकते किन्तु ब्राह्मण और साधु अपने उत्तम गुण, कर्म, स्वभाव से होते हैं जो कि परोपकारी हों। सुना है कि जैसे रूम के 'पोप' अपने चेलों को कहते थे कि तुम अपने पाप हमारे सामने कहोगे तो हम क्षमा कर देंगे। विना हमारी सेवा और आज्ञा के कोई भी स्वर्ग में नहीं जा सकता। जो तुम स्वर्ग में जाना चाहो तो हमारे पास जितने रुपये जमा करोगे उतने ही की सामग्री स्वर्ग में तुम को मिलेगी। ऐसा सुन कर जब कोई आंख के अन्धे और गांठ के पूरे स्वर्ग में जाने की इच्छा करके 'पोप जी' को यथेष्ट रुपया देता था तब वह 'पोप जी' ईसा और मरियम की मूर्त्ति के सामने खड़ा होकर इस प्रकार की हुण्डी लिखकर देता था—'हे खुदावन्द ईसामसी! अमुक मनुष्य ने तेरे नाम पर लाख रुपये स्वर्ग में आने के लिये हमारे पास जमा कर दिये हैं। जब वह स्वर्ग में आवे तब तू अपने पिता के स्वर्ग के राज्य में पच्चीस सहस्र रुपयों में बागबगीचा और मकानात, पच्चीस सहस्र में सवारी शिकारी और नौकर चाकर, पच्चीस सहस्र रुपयों में खाना पीना कपड़ा लत्ता और पच्चीस सहस्र रुपये इस के इष्ट मित्र भाई बन्धु आदि के जियाफ़त के वास्ते दिला देना।' फिर उस हुण्डी के नीचे पोप जी अपनी सही करके हुण्डी उसके हाथ में देकर कह देते थे कि 'जब तू मरे तब इस हुण्डी को कबर में अपने सिराने धर लेने के लिए अपने कुटुम्ब को कह रखना। फिर तुझे ले जाने के लिये फरिश्ते आवेंगे तब तुझे और तेरी हुण्डी को स्वर्ग में ले जा कर लिखे प्रमाणे सब चीजें तुझ को दिला देंगे।'

अब देखिये जानो स्वर्ग का ठेका पोप जी ने ही ले लिया हो। जब तक यूरोप देश में मूर्खता थी तभी तक वहां पोप जी की लीला चलती थी परन्तु अब विद्या के होने से पोप जी की झूठी लीला बहुत नहीं चलती किन्तु निर्मूल भी नहीं हुई।

वैसे ही आर्य्यावर्त्त देश में भी जानो पोप जी ने लाखों अवतार लेकर लीला फैलाई हो। अर्थात् राजा और प्रजा को विद्या न पढ़ने देना, अच्छे पुरुषों का सङ्ग

न होने देना, रात दिन बहकाने के सिवाय दूसरा कुछ भी काम नहीं करना है। परन्तु यह बात ध्यान में रखना कि जो-जो छलकपटादि कुत्सित व्यवहार करते हैं वे ही पोप कहाते हैं। जो कोई उन में भी धार्मिक विद्वान् परोपकारी हैं वे सच्चे ब्राह्मण और साधु हैं।

अब उन्हीं छली कपटी स्वार्थी लोगों (मनुष्यों को ठग कर अपना प्रयोजन सिद्ध करने वालों ही का ग्रहण **'पोप'** शब्द से करना और ब्राह्मण तथा साधु नाम से उत्तम पुरुषों का स्वीकार करना योग्य है। देखो! जो कोई भी उत्तम ब्राह्मण वा साधु न होता तो वेदादि सत्यशास्त्रों के पुस्तक स्वरसहित का पठन-पाठन जैन, मुसलमान, ईसाई आदि के जाल से बचाकर आर्यों को वेदादि सत्यशास्त्रों में प्रीतियुक्त वर्णाश्रमों में रखना ऐसा कौन कर सकता? सिवाय ब्राह्मण साधुओं के! **'विषादप्यमृतं ग्राह्यम्।'** मनु० ॥ विष से भी अमृत के ग्रहण करने के समान पोपलीला से बहकाने में से भी आर्य्यों का जैन आदि मतों से बचा रहना जानो विष में अमृत के समान गुण समझना चाहिये।

जब यजमान विद्याहीन हुए और आप कुछ पाठ पूजा पढ़ कर अभिमान में आके सब लोगों ने परस्पर सम्मति करके राजा आदि से कहा कि ब्राह्मण और साधु अदण्ड्य हैं। देखो-**'ब्राह्मणो न हन्तव्यः'** **'साधुर्न हन्तव्यः'** ऐसे ऐसे वचन जो कि सच्चे ब्राह्मण और सच्चे साधुओं के विषय में थे सो पोपों ने अपने पर घटा लिये। और भी झूठे-झूठे वचनयुक्त ग्रन्थ रच कर उन में ऋषि मुनियों के नाम धर के उन्हीं के नाम से सुनाते रहे। उन प्रतिष्ठित ऋषि महर्षियों के नाम से अपने पर से दण्ड की व्यवस्था उठवा दी। पुनः यथेष्टाचार करने लगे अर्थात् ऐसे करडे नियम चलाये कि उन पोपों की आज्ञा के विना सोना, उठना, बैठना, जाना, आना, खाना, पीना, आदि भी नहीं कर सकते थे। राजाओं को ऐसा निश्चय कराया कि पोप संज्ञक कहने मात्र के ब्राह्मण साधु चाहे सो करें। उन को कभी दण्ड न देना अर्थात् उन पर मन में भी दण्ड देने की इच्छा न करनी चाहिये।

जब ऐसी मूर्खता हुई तब जैसी पोपों की इच्छा हुई वैसा करने कराने लगे। अर्थात् इस बिगाड़ के मूल महाभारत युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि उस समय में ऋषि मुनि भी थे तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये। जब सच्चा उपदेश न रहा तब आर्य्यावर्त्त में अविद्या फैलकर परस्पर लड़ने झगड़ने लगे। क्योंकि-

उपदेश्योपदेष्टृत्वात् तत्सिद्धिः ॥ इतरथान्धपरम्परा ॥ -सांख्यसू० ॥

अर्थात् जब उत्तम-उत्तम उपदेशक होते हैं तब अच्छे प्रकार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सिद्ध होते हैं। और जब उत्तम उपदेशक और श्रोता नहीं रहते तब अन्ध परम्परा चलती है। फिर भी जब सत्पुरुष उत्पन्न होकर सत्योपदेश करते हैं तभी अन्धपरम्परा नष्ट होकर प्रकाश की परम्परा चलती है।

पुनः वे पोप लोग अपनी और अपने चरणों की पूजा कराने लगे और कहने लगे कि इसी में तुम्हारा कल्याण है। जब ये लोग इन के वश में हो गये तब प्रमाद और विषयासक्ति में निमग्न होकर गड़रिये के समान झूठे गुरु और चेले फंसे। विद्या, बल, बुद्धि, पराक्रम, शूरवीरतादि शुभगुण सब नष्ट होते चले।

पश्चात् जब विषयासक्त हुए तो मांस, मद्य का सेवन गुप्त-गुप्त करने लगे। पश्चात् उन्हीं में से एक ने वाममार्ग खड़ा किया। 'शिव उवाच' 'पार्वत्युवाच' 'भैरव

उवाच' इत्यादि नाम लिख कर उन का तन्त्र नाम धरा। उन में ऐसी-ऐसी विचित्र लीला की बातें लिखीं कि–

मद्यं मांसं च मीनं च मुद्रा मैथुनमेव च।
एते पञ्च मकाराः स्युर्मोक्षदा हि युगे युगे॥ १॥
प्रवृत्ते भैरवीचक्रे सर्वे वर्णा द्विजातयः।
निवृत्ते भैरवीचक्रे सर्वे वर्णाः पृथक् पृथक्॥ २॥
पीत्वा पीत्वा पुनः पीत्वा यावत्पतति भूतले।
पुनरुत्थाय वै पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते॥ ३॥
मातृयोनिं परित्यज्य विहरेत् सर्वयोनिषु॥ ४॥
वेदशास्त्रपुराणानि सामान्यगणिका इव ।
एकैव शाम्भवी मुद्रा गुप्ता कुलवधूरिव॥ ५॥

अर्थात् देखो इन गवर्गण्ड पोपों की लीला जो कि वेदविरुद्ध महा अधर्म के काम हैं उन्हीं को श्रेष्ठ वाममर्गियों ने माना। मद्य, मांस, मीन अर्थात् मच्छी, मुद्रा पूरी कचौरी और बड़े रोटी आदि चर्वण, योनि, पात्राधार, मुद्रा और पांचवां मैथुन अर्थात् पुरुष सब शिव और स्त्री सब पार्वती के समान मान कर–

अहं भैरवस्त्वं भैरवी ह्यावयोरस्तु सङ्गमः॥

चाहे कोई पुरुष वा स्त्री हो इस ऊटपटांग वचन को पढ़ के समागम करने में वे वाममार्गी दोष नहीं मानते । अर्थात् जिन नीच स्त्रियों को छूना नहीं उनको अतिपवित्र उन्होंने माना है। जैसे शास्त्रों में रजस्वला आदि स्त्रियों के स्पर्श का निषेध है उन को वाममार्गियों ने अतिपवित्र माना है। सुनो इन का श्लोक खण्ड बण्ड–

रजस्वला पुष्करं तीर्थं चाण्डाली तु स्वयं काशी । चर्मकारी प्रयागः स्याद्रजकी मथुरा मता ॥ अयोध्या पुक्कसी प्रोक्ता॥ इत्यादि ।

रजस्वला के साथ समागम करने से जानो पुष्कर का स्नान, चाण्डाली से समागम में काशी की यात्रा, चमारी से समागम करने से मानो प्रयागस्नान, धोबी की स्त्री के साथ समागम करने में मथुरा यात्रा और कंजरी के साथ लीला करने से मानो अयोध्या तीर्थ कर आये। मद्य का नाम धरा '**तीर्थ**', मांस का नाम शुद्धि और '**पुष्प**' मच्छी का नाम '**तृतीया**' और '**जलतुम्बिका**', मुद्रा का नाम '**चतुर्थी**', मैथुन का नाम '**पञ्चमी**'। इसलिये ऐसे-ऐसे नाम धरे हैं कि जिस से दूसरा न समझ सके। अपने कौल, आर्द्रवीर, शाम्भव और गण आदि नाम रक्खे हैं। और जो वाममार्ग मत में नहीं हैं, उनका '**कण्टक**' '**विमुख**', शुष्कपशु**'** आदि नाम धरे हैं । और कहते हैं कि जब भैरवीचक्र हो तब उस में ब्राह्मण से लेकर चाण्डालपर्यन्त का नाम द्विज हो जाता है । और जब भैरवीचक्र से अलग हों तब सब अपने-अपने वर्णस्थ हो जायें।

भैरवीचक्र में वाममार्गी लोग भूमि वा पट्टे पर एक विन्दु त्रिकोण, चतुष्कोण, वर्त्तुलाकार बना कर उस पर मद्य का घड़ा रखके उस की पूजा करते हैं। फिर ऐसा मन्त्र पढ़ते हैं–**'ब्रह्मशापं विमोचय'** हे मद्य! तू ब्रह्मा आदि के शाप से रहित हो। एक गुप्त स्थान में कि जहां सिवाय वाममार्गी के दूसरे को नहीं आने देते वहां स्त्री और पुरुष इकट्ठे होते हैं। वहां एक स्त्री को नङ्गी कर पूजते और स्त्री लोग किसी पुरुष को नङ्गा कर पूजती हैं। पुनः कोई किसी की स्त्री कोई अपनी वा दूसरे की कन्या, कोई किसी की वा अपनी माता, भगिनी, पुत्रवधू आदि आती हैं। पश्चात् एक पात्र में मद्य भरके मांस और बड़े आदि एक स्थाली में धर रखते

हैं। उस मद्य के प्याले को जो कि उन का आचार्य्य होता है वह हाथ में लेकर बोलता है कि—**'भैरवोऽहम्' 'शिवोऽहम्'** मैं भैरव वा शिव हूं कह कर पी जाता है। फिर उसी भूंठे पात्र से सब पीते हैं। और जब किसी की स्त्री वा वेश्या नङ्गी कर अथवा किसी पुरुष को नङ्गा कर हाथ में तलवार दे के उस का नाम देवी और पुरुष का नाम महादेव धरते हैं। उन के उपस्थ इन्द्रिय की पूजा करते हैं तब उस देवी वा शिव को मद्य का प्याला पिला कर उसी भूंठे पात्र से सब लोग एक-एक प्याला पीते हैं। फिर उसी प्रकार क्रम से पी-पी के उन्मत्त होकर चाहें कोई किसी की बहिन, कन्या वा माता क्यों न हो, जिस की जिस के साथ इच्छा हो उस के साथ कुकर्म करते हैं। कभी-कभी बहुत नशा चढ़ने से जूते, लात, मुक्कामुक्की, केशाकेशी, आपस में लड़ते हैं किसी-किसी को वहीं वमन होता है। उन में जो पहुंचा हुआ अघोरी अर्थात् सब में सिद्ध गिना जाता है; वह वमन हुई चीज को भी खा लेता है। अर्थात् इन के सबसे बड़े सिद्ध की ये बातें हैं कि—

हालां पिबति दीक्षितस्य मन्दिरे सुप्तो निशायां गणिकागृहेषु।
विराजते कौलवचक्रवर्ती॥

जो दीक्षित अर्थात् कलार के घर में जाके बोतल पर बोतल चढ़ावे। रण्डियों के घर में जाके उन से कुकर्म करके सोवे जो इत्यादि कर्म निर्लज्ज, निःशङ्क होकर करे वही वाममार्गियों में सर्वोपरि मुख्य चक्रवर्ती राजा के समान माना जाता है। अर्थात् जो बड़ा कुकर्मी वही उन में बड़ा और जो अच्छे काम करे और बुरे कामों से डरे वही छोटा। क्योंकि—

पाशबद्धो भवेज्जीवः पाशमुक्तः सदा शिवः॥

ऐसा तन्त्र में कहते हैं कि जो लोकलज्जा, शास्त्रलज्जा, कुललज्जा, देशलज्जा आदि पाशों में बंधा है वह जीव और जो निर्लज्ज होकर बुरे काम करे वही सदा शिव है।

उड्डीस तन्त्र आदि में एक प्रयोग लिखा है कि एक घर में चारों ओर आलय हों। उन में मद्य के बोतल भर के धर देवे। इस आलय से एक बोतल पी के दूसरे आलय पर जावे। उसमें से पी तीसरे और तीसरे में से पीके चौथे आलय में जावे। खड़ा-खड़ा तब तक मद्य पीवे कि जब तक लकड़ी के समान पृथिवी में न गिर पड़े। फिर जब नशा उतरे तब उसी प्रकार पीकर गिर पड़े। पुनः तीसरी वार इसी प्रकार पीके गिर के उठे तो उस का पुनर्जन्म न हो अर्थात् सच तो यह है कि ऐसे-ऐसे मनुष्यों का पुनः मनुष्यजन्म होना ही कठिन है किन्तु नीच योनि में पड़ कर बहुकालपर्यन्त पड़ा रहेगा।

वामियों के तन्त्र ग्रन्थों में यह नियम है कि एक माता को छोड़ के किसी स्त्री को भी न छोड़ना चाहिये अर्थात् चाहे कन्या हो वा भगिनी आदि क्यों न हो; सब के साथ संगम करना चाहिये। इन वाममर्गियों में **दश महाविद्या** प्रसिद्ध हैं उनमें से एक मातङ्गी विद्यावाला कहता है कि **'मातरमपि न त्यजेत्'** अर्थात् माता को भी समागम किये विना न छोड़ना चाहिये। और स्त्री पुरुष के समागम समय में मन्त्र जपते हैं कि हम को सिद्धि प्राप्त हो जायें। ऐसे पागल महामूर्ख मनुष्य भी संसार में बहुत न्यून होंगे!!! जो मनुष्य भूंठ चलाना चाहता है वह सत्य की निन्दा अवश्य ही करता है। देखो! वाममार्गी क्या कहते हैं ? वेद, शास्त्र और पुराण ये सब सामान्य वेश्याओं के समान हैं और जो यह शाम्भवी वाममार्ग की मुद्रा है

वह गुप्त कुल की स्त्री के तुल्य है। इसीलिये इन लोगों ने केवल वेद-विरुद्ध मत खड़ा किया है। पश्चात् इन लोगों का मत बहुत चला। तब धूर्त्तता करके वेदों के नाम से भी वाममार्ग की थोड़ी-थोड़ी लीला चलाई। अर्थात्—

सौत्रामण्यां सुरां पिबेत्। प्रोक्षितं भक्षयेन्मांसम्।
वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति॥
न मांसभक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने।
प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला॥ मनु०॥

सौत्रामणि यज्ञ में मद्य पीवे। इस का अर्थ तो यह है कि सौत्रामणि यज्ञ में सोमरस अर्थात् सोमवल्ली का रस पीये। प्रोक्षित अर्थात् यज्ञ में मांस खाने में दोष नहीं ऐसी पामरपन की बातें वाममार्गियों ने चलाई हैं। उन से पूछना चाहिये कि जो वैदिकी हिंसा हिंसा न हो तो तुझ और तेरे कुटुम्ब को मार के होम कर डालें तो क्या चिन्ता है ? मांसभक्षण करने, मद्य पीने, परस्त्रीगमन करने आदि में दोष नहीं है; यह कहना छोकड़पन है। क्योंकि विना प्राणियों के पीड़ा दिये मांस प्राप्त नहीं होता और विना अपराध के पीड़ा देना धर्म का काम नहीं। मद्यपान का तो सर्वथा निषेध ही है क्योंकि अब तक वाममार्गियों के विना किसी ग्रन्थ में नहीं लिखा किन्तु सर्वत्र निषेध है। और विना विवाह के मैथुन में भी दोष है। इस को निर्दोष कहनेवाला सदोष है। ऐसे-ऐसे वचन भी ऋषियों के ग्रन्थ में डाल के कितने ही ऋषि मुनियों के नाम से ग्रन्थ बना कर गोमेध, अश्वमेध नाम यज्ञ भी कराने लगे थे। अर्थात् इन पशुओं को मारके होम करने से यजमान और पशु को स्वर्ग की प्राप्ति होती है; ऐसी प्रसिद्धि की। निश्चय तो यह है कि जो ब्राह्मणग्रन्थों में अश्वमेध, गोमेध, नरमेध आदि शब्द हैं उन का ठीक-ठीक अर्थ नहीं जाना है क्योंकि जो जानते तो ऐसा अनर्थ क्यों करते?

(प्रश्न) अश्वमेध, गोमेध, नरमेध आदि शब्दों का अर्थ क्या है?

(उत्तर) इन का अर्थ तो यह है कि—

राष्ट्रं वा अश्वमेधः। अन्नꣳहि गौः।
अग्निर्वा अश्वः। आज्यं मेधः॥ शतपथब्राह्मणे॥

घोड़े, गाय आदि पशु तथा मनुष्य मार के होम करना कहीं नहीं लिखा। केवल वाममार्गियों के ग्रन्थों में ऐसा अनर्थ लिखा है। किन्तु यह भी बात वाममार्गियों ने चलाई। और जहाँ-जहाँ लेख है वहाँ-वहाँ भी वाममार्गियों ने प्रक्षेप किया है। देखो ! राजा न्याय धर्म से प्रजा का पालन करे, विद्यादि का देनेहारा और यजमान द्वारा अग्नि में घी आदि का होम करना अश्वमेध, अन्न, इन्द्रियां, किरण, पृथिवी आदि को पवित्र रखना गोमेध; जब मनुष्य मर जाय तब उसके शरीर का विधिपूर्वक दाह करना नरमेध कहाता है।

(प्रश्न) यज्ञकर्त्ता कहते हैं कि यज्ञ करने से यजमान और पशु स्वर्गगामी तथा होम करके फिर पशु को जीता करते थे। यह बात सच्ची है वा नहीं ?

(उत्तर) नहीं। जो स्वर्ग को जाते हों तो ऐसी बात कहने वाले को मार के होम कर स्वर्ग में पहुंचाना चाहिये वा उस के प्रिय माता, पिता, स्त्री और पुत्रादि को मार होम कर स्वर्ग में क्यों नहीं पहुंचाते? वा वेदी में से पुनः क्यों नहीं जिला लेते हैं?

(प्रश्न) जब यज्ञ करते हैं तब वेदों के मन्त्र पढ़ते हैं। जो वेदों में न होता तो कहाँ से पढ़ते?

(उत्तर) मन्त्र किसी को कहीं पढ़ने से नहीं रोकता क्योंकि वह एक शब्द है। परन्तु उन का अर्थ ऐसा नहीं है कि पशु को मारके होम करना। जैसे—**'अग्नये स्वाहा'** इत्यादि मन्त्रों का अर्थ अग्नि में हवि, पुष्ट्यादिकारक घृतादि उत्तम पदार्थों के होम करने से वायु, वृष्टि, जल शुद्ध होकर जगत् को सुखकारक होते हैं। परन्तु इन सत्य अर्थों को वे मूढ़ नहीं समझते थे क्योंकि जो स्वार्थबुद्धि होते हैं। वे केवल अपने स्वार्थ करने के दूसरा कुछ भी नहीं जानते; मानते।

जब इन पोपों का ऐसा अनाचार देखा और दूसरा मरे का तर्पण श्राद्धादि करने को देख कर एक महाभयङ्कर वेदादि शास्त्रों का निन्दक बौद्ध वा जैन मत प्रचलित हुआ है। सुनते हैं कि एक इसी देश में गोरखपुर का राजा था। उस से पोपों ने यज्ञ कराया। उस की प्रिय राणी का समागम घोड़े के साथ कराने से उसके मर जाने पर पश्चात् वैराग्यवान् होकर अपने पुत्र को राज्य दे, साधु हो, पोपों की पोल निकालने लगा। इसी की शाखारूप चारवाक और आभाणक मत भी हुआ था। उन्होंने इस प्रकार के श्लोक बनाये हैं—

पशुश्चेन्निहतः स्वर्गं ज्योतिष्टोमे गमिष्यति।
स्वपिता यजमानेन तत्र कथं न हिंस्यते॥
मृतानामिह जन्तूनां श्राद्धं चेत्तृप्तिकारणम्।
गच्छतामिह जन्तूनां व्यर्थं पाथेयकल्पनम्॥

जो पशु मार कर अग्नि में होम करने से पशु स्वर्ग को जाता है तो यजमान अपने पिता आदि को मार के स्वर्ग में क्यों नहीं भेजते। जो मरे हुए मनुष्यों की तृप्ति के लिये श्राद्ध और तर्प्पण होता है तो विदेश में जाने वाले मनुष्य को मार्ग का खर्च खाने पीने के लिये बांधना व्यर्थ है। क्योंकि जब मृतक को श्राद्ध, तर्पण से अन्न, जल पहुंचता है तो जीते हुए परदेश में रहने वाले वा मार्ग में चलनेहारों को घर में रसोई बनी हुई का पत्तल परोस, लोटा भर के उस के नाम पर रखने से क्यों नहीं पहुँचता? जो जीते हुए दूर देश अथवा दश हाथ पर दूर बैठे हुए को दिया हुआ नहीं पहुंचता तो मरे हुए के पास किसी प्रकार नहीं पहुंच सकता। उन के ऐसे युक्तिसिद्ध उपदेशों को मानने लगे और उन का मत बढ़ने लगा।

जब बहुत से राजा भूमिये उन के मत में हुए तब पोप जी भी उन की ओर झुके क्योंकि इन को जिधर गफ्फा अच्छा मिले वहीं चले जायें। झट जैन बनने चले। जैन में भी और प्रकार की पोप-लीला बहुत है सो १२वें समुल्लास में लिखेंगे। बहुतों ने इन का मत स्वीकार किया परन्तु कितने ही जो पर्वत, काशी, कन्नौज, पश्चिम, दक्षिण देश वाले थे उन्होंने जैनों का मत स्वीकार नहीं किया था। वे जैनी वेद का अर्थ न जानकर बाहर की पोपलीला को भ्रान्ति से वेद पर मानकर वेदों की भी निन्दा करने लगे। उस के पठनपाठन यज्ञोपवीतादि और ब्रह्मचर्य्यादि नियमों को भी नाश किया। जहां जितने पुस्तक वेदादि के पाये नष्ट किये। आर्य्यों पर बहुत सी राजसत्ता भी चलाई; दुःख दिया। जब उन को भय शङ्का न रही तब अपने मत वाले गृहस्थ और साधुओं की प्रतिष्ठा और वेदमार्गियों का अपमान और पक्षपात से दण्ड भी देने लगे। और आप सुख आराम और घमण्ड में आ फूलकर फिरने लगे। ऋषभदेव से लेके महावीर पर्यन्त अपने तीर्थंकरों की बड़ी-बड़ी मूर्त्तियाँ बना

कर पूजा करने लगे **अर्थात् पाषाणादि मूर्त्तिपूजा की जड़ जैनियों से प्रचलित हुई।** परमेश्वर का मानना न्यून हुआ, पाषाणादि मूर्त्तिपूजा में लगे। ऐसा तीन सौ वर्ष पर्यन्त आर्यावर्त्त में जैनों का राज रहा। प्रायः वेदार्थज्ञान से शून्य हो गये थे। इस बात को अनुमान से अढ़ाई सहस्र वर्ष व्यतीत हुए होंगे।

बाईस सौ वर्ष हुए कि एक शङ्कराचार्य द्रविड़देशोत्पन्न ब्राह्मण ब्रह्मचर्य से व्याकरणादि सब शास्त्रों को पढ़कर सोचने लगे कि अहह! सत्य आस्तिक वेद मत का छूटना और जैन नास्तिक मत का चलना बड़ी हानि की बात हुई है; इन को किसी प्रकार हटाना चाहिये। शङ्कराचार्य्य शास्त्र तो पढ़े ही थे परन्तु जैन मत के भी पुस्तक पढ़े थे और उन की युक्ति भी बहुत प्रबल थी। उन्होंने विचारा कि इन को किस प्रकार हटावें? निश्चय हुआ कि उपदेश और शास्त्रार्थ करने से ये लोग हटेंगे। ऐसा विचार कर उज्जैन नगरी में आये। वहां उस समय सुधन्वा राजा था, जो जैनियों के ग्रन्थ और कुछ संस्कृत भी पढ़ा था। वहाँ जाकर वेद का उपदेश करने लगे और राजा से मिल कर कहा कि आप संस्कृत और जैनियों के भी ग्रन्थों को पढ़े हो और जैन मत को मानते हो। इसलिये आपको मैं कहता हूं कि जैनियों के पण्डितों के साथ मेरा शास्त्रार्थ कराइये। इस प्रतिज्ञा पर, जो हारे सो जीतने वाले का मत स्वीकार कर ले। और आप भी जीतने वाले का मत स्वीकार कीजियेगा।

यद्यपि सुधन्वा जैन मत में थे तथापि संस्कृत ग्रन्थ पढ़ने से उन की बुद्धि में कुछ विद्या का प्रकाश था। इस से उन के मन में अत्यन्त पशुता नहीं छाई थी। क्योंकि जो विद्वान् होता है वह सत्याऽसत्य की परीक्षा करके सत्य का ग्रहण और असत्य को छोड़ देता है। जब तक सुधन्वा राजा को बड़ा विद्वान् उपदेशक नहीं मिला था तब तक सन्देह में थे कि इन में कौन सा सत्य और कौन सा असत्य है। जब शङ्कराचार्य्य की यह बात सुनी और बड़ी प्रसन्नता के साथ बोले कि हम शास्त्रार्थ कराके सत्याऽसत्य का निर्णय अवश्य करावेंगे। जैनियों के पण्डितों को दूर-दूर से बुलाकर सभा कराई।

उसमें शङ्कराचार्य्य का वेदमत और जैनियों का वेदविरुद्ध मत था अर्थात् शङ्कराचार्य्य का पक्ष वेदमत का स्थापन और जैनियों का खण्डन और जैनियों का पक्ष अपने मत का स्थापन और वेद का खण्डन था। शास्त्रार्थ कई दिनों तक हुआ। जैनियों का मत यह था कि सृष्टि का कर्त्ता अनादि ईश्वर कोई नहीं। यह जगत् और जीव अनादि हैं। इन दोनों की उत्पत्ति और नाश कभी नहीं होता। इस से विरुद्ध शङ्कराचार्य्य का मत था कि अनादि सिद्ध परमात्मा ही जगत् का कर्त्ता है। यह जगत् और जीव झूठा है क्योंकि उस परमेश्वर ने अपनी माया से जगत् बनाया; वही धारण और प्रलय कर्त्ता है। और यह जीव और प्रपञ्च स्वप्नवत् है। परमेश्वर आप ही सब रूप होकर लीला कर रहा है।

बहुत दिन तक शास्त्रार्थ होता रहा परन्तु अन्त में युक्ति और प्रमाण से जैनियों का मत खण्डित और शङ्कराचार्य्य का मत अखण्डित रहा। तब उन जैनियों के पण्डित और सुधन्वा राजा ने वेद मत को स्वीकार कर लिया; जैनमत को छोड़ दिया। पुनः बड़ा हल्ला गुल्ला हुआ और सुधन्वा राजा ने अन्य अपने इष्ट मित्र राजाओं को लिखकर शङ्कराचार्य्य से शास्त्रार्थ कराया। परन्तु जैन का पराजय समय होने से पराजित होते गये।

पश्चात् शङ्कराचार्य्य के सर्वत्र आर्यावर्त्त देश में घूमने का प्रबन्ध सुधन्वादि

राजाओं ने कर दिया और उन की रक्षा के लिये साथ में नौकर चाकर भी रख दिये। उसी समय से सब के यज्ञोपवीत होने लगे और वेदों का पठन-पाठन भी चला। दस वर्ष के भीतर सर्वत्र आर्यावर्त्त देश में घूम कर जैनियों का खण्डन और वेदों का मण्डन किया। परन्तु शङ्कराचार्य्य के समय में जैन विध्वंस अर्थात् जितनी मूर्त्तियां जैनियों की निकलती हैं। वे शङ्कराचार्य्य के समय में टूटी थीं और जो विना टूटी निकलती हैं वे जैनियों ने भूमि में गाड़ दी थीं कि तोड़ी न जायें। वे अब तक कहीं भूमि में से निकलती हैं।

शंकराचार्य्य के पूर्व शैवमत भी थोड़ा सा प्रचरित था; उस का भी खण्डन किया। वाममार्ग का खण्डन किया। उस समय इस देश में धन बहुत था और स्वदेशभक्ति भी थी। जैनियों के मन्दिर शङ्कराचार्य्य और सुधन्वा राजा ने नहीं तुड़वाये थे क्योंकि उन में वेदादि की पाठशाला करने की इच्छा थी। जब वेदमत का स्थापन हो चुका और विद्या प्रचार करने का विचार करते ही थे। उतने में दो जैन ऊपर से कथनमात्र वेदमत और भीतर से कट्टर जैन अर्थात् कपटमुनि थे; शङ्कराचार्य्य उन पर अति प्रसन्न थे। उन दोनों ने अवसर पाकर शङ्कराचार्य्य को ऐसी विषयुक्त वस्तु खिलाई कि उन की क्षुधा मन्द हो गई। पश्चात् शरीर में फोड़े फुन्सी होकर छः महीने के भीतर शरीर छूट गया। तब सब निरुत्साही हो गये और जो विद्या का प्रचार होने वाला था वह भी न होने पाया।

जो-जो उन्होंने शारीरक भाष्यादि बनाये थे उन का प्रचार शङ्कराचार्य्य के शिष्य करने लगे। अर्थात् जो जैनियों के खण्डन के लिये ब्रह्म सत्य जगत् मिथ्या और जीव ब्रह्म की एकता कथन की थी उस का उपदेश करने लगे। दक्षिण में शृंगेरी, पूर्व में भूगोवर्धन, उत्तर में जोशी और द्वारिका में शारदामठ बांध कर शङ्कराचार्य के शिष्य महन्त बन और श्रीमान् होकर आनन्द करने लगे क्योंकि शङ्कराचार्य्य के पश्चात् उन के शिष्यों की बड़ी प्रतिष्ठा होने लगी।

अब इसमें विचारना चाहिये कि जो जीव ब्रह्म की एकता मिथ्या शंकराचार्य्य का निज मत था तो वह अच्छा मत नहीं और जो जैनियों के खण्डन के लिये उस मत का स्वीकार किया हो तो कुछ अच्छा है। नवीन वेदान्तियों का मत ऐसा है—

(प्रश्न) जगत् स्वप्नवत्, रज्जू में सर्प, सीप में चांदी, मृगतृष्णिका में जल, गन्धर्वनगर इन्द्रजालवत् यह संसार झूठा है। एक ब्रह्म ही सच्चा है।

(सिद्धान्ती) झूठा तुम किस को कहते हो?

(नवीन वेदान्ती) जो वस्तु न हो और प्रतीत होवे।

(सिद्धान्ती) जो वस्तु ही नहीं उस की प्रतीति कैसे हो सकती है?

(नवीन०) अध्यारोप से।

(सिद्धान्ती) अध्यारोप किस को कहते हो?

(नवीन०) **'वस्तुन्यवस्त्वारोपणमध्यासः'॥**

'अध्यारोपापवादाभ्यां निष्प्रपञ्चं प्रपञ्च्यते'॥

पदार्थ कुछ और हो उस में अन्य वस्तु का आरोपण करना अध्यास, अध्यारोप और उस का निराकरण करना अपवाद कहाता है। इन दोनों से प्रपंच रहित ब्रह्म में प्रपंचरूप जगत् विस्तार करते हैं।

(सिद्धान्ती) तुम रज्जू को वस्तु और सर्प को अवस्तु मान कर इस भ्रमजाल में पड़े हो। क्या सर्प वस्तु नहीं है। जो कहो कि रज्जू में नहीं तो देशान्तर में और

उसका संस्कारमात्र हृदय में है। फिर वह सर्प भी अवस्तु नहीं रहा । वैसे ही स्थाणु में पुरुष, सीप में चांदी आदि की व्यवस्था समझ लेना। और स्वप्न में भी जिनका भान होता है वे देशान्तर में हैं और उनके संस्कार आत्मा में भी हैं। इसलिये वह स्वप्न भी वस्तु में अवस्तु के आरोपण के समान नहीं।

(नवीन०) जो कभी न देखा, न सुना, जैसा कि अपना शिर कटा है और आप रोता है। जल की धारा ऊपर चली जाती है। जो कभी न हुआ था; देखा जाता है वह सत्य क्योंकर हो सके?

(सिद्धान्ती) यह भी दृष्टान्त तुम्हारे पक्ष को सिद्ध नहीं करता क्योंकि विना देखे सुने संस्कार नहीं होता। संस्कार के विना स्मृति और स्मृति के विना साक्षात् अनुभव नहीं होता। जब किसी से सुना वा देखा कि अमुक का शिर कटा और उसके भाई वा बाप आदि को लड़ाई में प्रत्यक्ष रोते देखा और फोहारे का जल ऊपर चढ़ते देखा वा सुना संस्कार उसी के आत्मा में होता है। जब यह जाग्रत के पदार्थ से अलग होके देखता है तब अपने आत्मा में उन्हीं पदार्थों को, जिन को देखा वा सुना होता देखता है। जब अपने ही में देखता है तब जानो अपना शिर कटा, आप रोता और ऊपर जाती जल की धारा को देखता है। यह भी वस्तु में अवस्तु के आरोपण के सदृश नहीं किन्तु जैसे नक्शा निकालने वाले पूर्व दृष्ट श्रुत वा किये हुओं को आत्मा में से निकाल कर कागज पर लिख देते हैं अथवा प्रतिबिम्ब का उतारने वाला बिम्ब को देख आत्मा में आकृति को धर बराबर लिख देता है। हां! इतना है कि कभी-कभी स्वप्न में स्मरणयुक्त प्रतीति जैसा कि अपने अध्यापक को देखता है और कभी बहुत देखने और सुनने में अतीत ज्ञान को साक्षात्कार करता है। तब स्मरण नहीं रहता कि जो मैंने उस समय देखा, सुना वा किया था उसी को देखता वा करता हूं। जैसा जागृत में स्मरण करता है वैसा स्वप्न में नहीं होता। देखो! इसलिये तुम्हारा अध्यास और आरोप का लक्षण झूठा है। और जो वेदान्ती लोग विवर्त्तवाद अर्थात् रज्जू में सर्पादि के भान होने का दृष्टान्त ब्रह्म में जगत् के भान होने में देते हैं; वह भी ठीक नहीं।

(नवीन) अधिष्ठान के विना अध्यस्त प्रतीत नहीं होता जैसे रज्जू न हो तो सर्प का भी भान नहीं हो सकता। जैसे रज्जू में सर्प तीन काल में नहीं परन्तु अन्धकार और कुछ प्रकाश के मेल में अकस्मात् रज्जू को देखने से सर्प का भ्रम होकर भय से कंपता है। जब उस को दीप आदि से देख लेता है उसी समय भ्रम और भय निवृत्त हो जाता है। वैसे ब्रह्म में जो जगत् की मिथ्या प्रतीति हुई है वह ब्रह्म के साक्षात्कार होने में उस जगत् की निवृत्ति और ब्रह्म की प्रतीति होती है। जैसी कि सर्प की निवृत्ति और रज्जू की प्रतीति होती है।

(सिद्धान्ती) ब्रह्म में जगत् का भान किसको हुआ?

(नवीन) जीव को।

(सिद्धान्ती) जीव कहां से हुआ?

(नवीन) अज्ञान से।

(सिद्धान्ती) अज्ञान कहां से हुआ और कहां रहता है?

(नवीन) अज्ञान अनादि और ब्रह्म में रहता है।

(सिद्धान्ती) ब्रह्म में ब्रह्म का अज्ञान हुआ वा किसी अन्य का और वह अज्ञान किस को हुआ?

(नवीन) चिदाभास को।

(सिद्धान्ती) चिदाभास का स्वरूप क्या है?

(नवीन) ब्रह्म। ब्रह्म को ब्रह्म का अज्ञान अर्थात् स्वरूप को आप ही भूल जाता है।

(सिद्धान्ती) उसके भूलने में निमित्त क्या है?

(नवीन) अविद्या।

(सिद्धान्ती) अविद्या सर्वव्यापी सर्वज्ञ का गुण है वा अल्पज्ञ का?

(नवीन) अल्पज्ञ का।

(सिद्धान्ती) तो तुम्हारे मत में विना एक अनन्त सर्वज्ञ चेतन के दूसरा कोई चेतन है वा नहीं? और अल्पज्ञ कहां से आया? हां! जो अल्पज्ञ चेतन ब्रह्म से भिन्न मानो तो ठीक है। जब एक ठिकाने ब्रह्म को अपने स्वरूप का अज्ञान हो तो सर्वत्र अज्ञान फैल जाय। जैसे शरीर में फोड़े की पीड़ा सब शरीर के अवयवों को निकम्मा कर देती है; इसी प्रकार ब्रह्म भी एकदेश में अज्ञानी और क्लेशयुक्त हो तो सब ब्रह्म भी अज्ञानी और पीड़ा के अनुभवयुक्त हो जाय।

(नवीन) यह सब उपाधि का धर्म है, ब्रह्म का नहीं।

(सिद्धान्ती) उपाधि जड़ है वा चेतन और सत्य वा असत्य।

(नवीन) अनिर्वचनीय है अर्थात् जिस को जड़ वा चेतन, सत्य वा असत्य नहीं कह सकते।

(सिद्धान्ती) यह तुम्हारा कहना **'वदतो व्याघातः'** के तुल्य है क्योंकि कहते हो अविद्या है, जिस को जड़, चेतन, सत्, असत् नहीं कह सकते। यह ऐसी बात है कि जैसे सोने में पीतल मिला हो उस को सराफ के पास परीक्षा करावे कि यह सोना है वा पीतल। तब यही कहोगे कि इस को हम न सोना न पीतल कह सकते हैं किन्तु इस में दोनों धातु मिली हैं।

(नवीन) देखो! जैसे घटाकाश, मठाकाश, मेघाकाश और महदाकाशोपाधि अर्थात् घड़ा घर और मेघ के होने से भिन्न-भिन्न प्रतीत होते हैं, वास्तव में महदाकाश ही है; ऐसे ही माया, अविद्या, समष्टि, व्यष्टि और अन्तःकरणों की उपाधियों से ब्रह्म अज्ञानियों को पृथक्-पृथक् प्रतीत हो रहा है; वास्तव में एक ही है। देखो! अग्रिम प्रमाण में क्या कहा है—

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव ।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च॥ उपनिषद्

जैसे अग्नि लम्बे, चौड़े, गोल, छोटे, बड़े सब आकृति वाले पदार्थों में व्यापक होकर तदाकार दीखता और उन से पृथक् है; वैसे सर्वव्यापक परमात्मा अन्तःकरणों में व्यापक होके अन्तःकरणाऽऽकार हो रहा है परन्तु उन से अलग है।

(सिद्धान्ती) यह भी तुम्हारा कहना व्यर्थ है क्योंकि जैसे घट, मठ, मेघों और आकाश को भिन्न मानते हो वैसे कारणकार्य्यरूप जगत् और जीव को ब्रह्म से और ब्रह्म को इनसे भिन्न मान लो?

(नवीन) जैसा अग्नि सब में प्रविष्ट होकर देखने में तदाकार दीखता है। इसी प्रकार परमात्मा जड़ और जीव में व्यापक होकर आकारवाला, अज्ञानियों को आकारयुक्त दीखता है। वास्तव में ब्रह्म न जड़ और न जीव है। जैसे सहस्र जल के कूण्डे धरे हों उनमें सूर्य्य के सहस्रों प्रतिबिम्ब दीखते हैं; वस्तुतः सूर्य्य एक

है। कूण्डों के नष्ट होने से जल के चलने वा फैलने से सूर्य्य न नष्ट होता है, न चलता और न फैलता। इसी प्रकार अन्तःकरणों में ब्रह्म का आभास जिस को चिदाभास कहते हैं; पड़ा है। जब तक अन्तःकरण है तभी तक जीव है। जब अन्तःकरण ज्ञान से नष्ट होता है तब जीव ब्रह्मस्वरूप है। इस चिदाभास को अपने ब्रह्मस्वरूप का अज्ञान कर्त्ता, भोक्ता सुखी, दुःखी; पापी, पुण्यात्मा, जन्म, मरण अपने में आरोपित करता है। तब तक संसार के बन्धनों से नहीं छूटता।

(सिद्धान्ती) यह दृष्टान्त तुम्हारा व्यर्थ है क्योंकि सूर्य आकार वाला; जल कूण्डे भी आकार वाले हैं। सूर्य्य जलकूण्डे से भिन्न और सूर्य से जल कूण्डे भिन्न हैं तभी प्रतिबिम्ब पड़ता है। यदि निराकार होते तो उन का प्रतिबिम्ब कभी न होता। और जैसे परमेश्वर निराकार, सर्वत्र आकाशवत् व्यापक होने से ब्रह्म से कोई पदार्थ वा पदार्थों से ब्रह्म पृथक् नहीं हो सकता और व्याप्यव्यापक सम्बन्ध से एक भी नहीं हो सकता। अर्थात् अन्वय व्यतिरेक भाव से देखने से व्याप्यव्यापक मिले हुए और सदा पृथक् रहते हैं। जो एक हो तो अपने में व्याप्यव्यापक भाव सम्बन्ध कभी नहीं घट सकता। सो बृहदारण्यक के अन्तर्यामी ब्राह्मण में स्पष्ट लिखा है और ब्रह्म का आभास भी नहीं पड़ सकता क्योंकि विना आकार के आभास का होना असम्भव है। जो अन्तःकरणोपाधि से ब्रह्म को जीव मानते हो सो तुम्हारी बात बालक के समान है क्योंकि अन्तःकरण चलायमान, खण्ड-खण्ड और ब्रह्म अचल और अखण्ड है। यदि तुम ब्रह्म और जीव को पृथक्-पृथक् न मानोगे तो इसका उत्तर दीजिये कि जहाँ-जहाँ अन्तःकरण चला जायगा वहाँ-वहाँ के ब्रह्म को अज्ञानी और जिस-जिस देश को छोड़ेगा वहाँ-वहाँ के ब्रह्म को ज्ञानी कर देवेगा वा नहीं? जैसे छाता प्रकाश के बीच में जहाँ-जहाँ जाता है वहाँ-वहाँ के प्रकाश को आवरणयुक्त और जहाँ-जहाँ से हटता है वहाँ-वहाँ के प्रकाश को आवरणरहित कर देता है। वैसे ही अन्तःकरण ब्रह्म को क्षण-क्षण में ज्ञानी, अज्ञानी, बद्ध और मुक्त करता जायगा। अखण्ड ब्रह्म के एक देश में आवरण का प्रभाव सर्वदेश में होने से सब ब्रह्म अज्ञानी हो जायगा क्योंकि वह चेतन है। और मथुरा में जिस अन्तःकरणस्थ ब्रह्म ने जो वस्तु देखी उसका स्मरण उसी अन्तःकरणस्थ से काशी में नहीं हो सकता क्योंकि **'अन्यदृष्टमन्यो न स्मरतीति न्यायात्'** और के देखे का स्मरण और को नहीं होता। जिस चिदाभास ने मथुरा में देखा वह चिदाभास काशी में नहीं रहता किन्तु जो मथुरास्थ अन्तःकरण का प्रकाशक है वह काशीस्थ ब्रह्म नहीं होता। जो ब्रह्म ही जीव है, पृथक् नहीं तो जीव को सर्वज्ञ होना चाहिये। यदि ब्रह्म का प्रतिबिम्ब पृथक् है तो प्रत्यभिज्ञा अर्थात् पूर्व दृष्ट, श्रुत का ज्ञान किसी को नहीं हो सकेगा। जो कहो कि ब्रह्म एक है इसलिये स्मरण होता है तो एक ठिकाने अज्ञान वा दुःख होने से सब ब्रह्म को अज्ञान वा दुःख हो जाना चाहिये। और ऐसे-ऐसे दृष्टान्तों से नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वभाव ब्रह्म को तुमने अशुद्ध अज्ञानी और बद्ध आदि दोषयुक्त कर दिया है और अखण्ड को खण्ड-खण्ड कर दिया।

(नवीन) निराकार का भी आभास होता है जैसा कि दर्पण वा जलादि में आकाश का आभास पड़ता है। वह नीला वा किसी अन्य प्रकार गम्भीर गहरा दीखता है वैसा ब्रह्म का भी सब अन्तःकरणों में आभास पड़ता है।

(सिद्धान्ती) जब आकाश में रूप ही नहीं है तो उस को आंख से कोई भी नहीं देख सकता। जो पदार्थ दीखता ही नहीं वह दर्पण और जलादि में कैसे

दीखेगा? गहरा वा छिदरा साकार वस्तु दीखता है; निराकार नहीं।

(नवीन) तो फिर जो यह ऊपर नीला सा दीखता है, वही आदर्श वा जल में भान होता है। वह क्या पदार्थ है?

(सिद्धान्ती) वह पृथिवी से उड़ कर जल, पृथिवी और अग्नि के त्रसरेणु हैं। जहां से वर्षा होती है वहां जल न हो तो वर्षा कहां से होवे? इसलिये जो दूर-दूर तम्बू के समान दीखता है वह जल का चक्र है। जैसे कुहिर दूर से घनाकार दीखता है और निकट से छिदिरा और डेरे के समान भी दीखता है वैसा आकाश में जल दीखता है।

(नवीन) क्या हमारे रज्जू, सर्प और स्वप्नादि के दृष्टान्त मिथ्या हैं?

(सिद्धान्ती) नहीं। तुम्हारी समझ मिथ्या है। सो हम ने पूर्व लिख दिया। भला यह तो कहो कि प्रथम अज्ञान किस को होता है?

(नवीन) ब्रह्म को।

(सिद्धान्ती) ब्रह्म अल्पज्ञ है वा सर्वज्ञ।

(नवीन) न सर्वज्ञ, न अल्पज्ञ। क्योंकि सर्वज्ञता और अल्पज्ञता उपाधि सहित में होती है।

(सिद्धान्ती) उपाधि से सहित कौन है?

(नवीन) ब्रह्म।

(सिद्धान्ती) तो ब्रह्म ही सर्वज्ञ और अल्पज्ञ हुआ तो तुमने सर्वज्ञ और अल्पज्ञ का निषेध क्यों किया था? जो कहो कि उपाधि कल्पित अर्थात् मिथ्या है तो कल्पक अर्थात् कल्पना करने वाला कौन है?

(नवीन) जीव ब्रह्म है वा अन्य?

(सिद्धान्ती) अन्य है। क्योंकि जो ब्रह्मस्वरूप है तो जिस ने मिथ्या कल्पना की वह ब्रह्म ही नहीं हो सकता। जिस की कल्पना मिथ्या है वह सच्चा कब हो सकता है?

(नवीन) हम सत्य और असत्य को झूठ मानते हैं और वाणी से बोलना भी मिथ्या है।

(सिद्धान्ती) जब तुम झूठ कहने और मानने वाले हो तो झूठे क्यों नहीं?

(नवीन) रहो। झूठ और सच हमारे ही में कल्पित है और हम दोनों के साक्षी अधिष्ठान हैं।

(सिद्धान्ती) जब तुम सत्य और झूठ के आधार हुए तो साहूकार और चोर के सदृश तुम्हीं हुए। इससे तुम प्रामाणिक भी नहीं रहे। क्योंकि प्रामाणिक वह होता है जो सर्वदा सत्य माने, सत्य बोले, सत्य करे, झूठ न माने, झूठ न बोले और झूठ कदाचित् न करे। जब तुम अपनी बात को आप ही झूठ करते हो तो तुम अनाप्त मिथ्यावादी हो।

(नवीन) अनादि माया जो कि ब्रह्म के आश्रय और ब्रह्म ही का आवरण करती है उस को मानते हो वा नहीं?

(सिद्धान्ती) नहीं मानते। क्योंकि तुम माया का अर्थ ऐसा करते हो कि जो वस्तु न हो और भासे है तो इस बात को वह मानेगा जिस के हृदय की आंख फूट गई हो। क्योंकि जो वस्तु नहीं उस का भासमान होना सर्वथा असम्भव है। जैसा बन्ध्या के पुत्र का प्रतिबिम्ब कभी नहीं हो सकता। और यह **'सन्मूलाः सोम्येमाः**

प्रजाः' इत्यादि छान्दोग्य उपनिषत् के वचनों से विरुद्ध कहते हो?

(नवीन) क्या तुम वसिष्ठ, शङ्कराचार्य आदि और निश्चलदास पर्य्यन्त जो तुम से अधिक पण्डित हुए हैं उन्होंने लिखा है उस का खण्डन करते हो? हम को तो वसिष्ठ, शङ्कराचार्य और निश्चलदास आदि अधिक दीखते हैं।

(सिद्धान्ती) तुम विद्वान् हो वा अविद्वान्?

(नवीन) हम भी कुछ विद्वान् हैं।

(सिद्धान्ती) अच्छा तो वसिष्ठ, शङ्कराचार्य और निश्चलदास के पक्ष का हमारे सामने स्थापन करो; हम खण्डन करते हैं। जिस का पक्ष सिद्ध हो वही बड़ा है। जो उन की और तुम्हारी बात अखण्डनीय होती है तो तुम उन की युक्तियां लेकर हमारी बात का खण्डन क्यों न कर सकते? तब तुम्हारी और उन की बात माननीय होवे।

अनुमान है कि शङ्कराचार्य आदि ने तो जैनियों के मत के खण्डन करने ही के लिये यह मत स्वीकार किया हो क्योंकि देश काल के अनुकूल अपने पक्ष को सिद्ध करने के लिये बहुत से स्वार्थी विद्वान् अपने आत्मा के ज्ञान से विरुद्ध भी कर लेते हैं। और जो इन बातों को अर्थात् जीव ईश्वर की एकता, जगत् मिथ्या आदि व्यवहार सच्चा ही मानते थे तो उन की बात सच्ची नहीं हो सकती।

और निश्चलदास का पाण्डित्य देखो ऐसा है **'जीवो ब्रह्माऽभिन्नश्चेतनत्वात्'** उन्होंने 'वृत्तिप्रभाकर' में जीव ब्रह्म की एकता के लिये अनुमान लिखा है कि चेतन होने से जीव ब्रह्म से अभिन्न है। यह बहुत कम समझ पुरुष की बात के सदृश बात है। क्योंकि साधर्म्यमात्र से एक दूसरे के साथ एकता नहीं होती; वैधर्म्य भेदक होता है। जैसे कोई कहे कि 'पृथिवी जलाऽभिन्ना जडत्वात्' जड़ के होने से पृथिवी जल से अभिन्न है। जैसा यह वाक्य सङ्गत कभी नहीं हो सकता वैसे निश्चलदास जी का भी लक्षण व्यर्थ है। क्योंकि जो अल्प, अल्पज्ञता और भ्रान्तिमत्त्वादि धर्म्म जीव में ब्रह्म से और सर्वगत सर्वज्ञता और निर्भ्रान्तित्वादि वैधर्म्य ब्रह्म में जीव से विरुद्ध है इस से ब्रह्म और जीव भिन्न-भिन्न हैं। जैसे गन्धवत्त्व कठिनत्व आदि भूमि के धर्म, रसवत्त्व द्रवत्वादि जल के धर्म से विरुद्ध होने से पृथिवी और जल एक नहीं हैं। वैसे जीव और ब्रह्म के वैधर्म्य होने से जीव और ब्रह्म एक न कभी थे, न हैं न कभी होंगे।

इतने ही से निश्चलदासादि को समझ लीजिये कि उन में कितना पाण्डित्य था और जिस ने योगवासिष्ठ बनाया है वह कोई आधुनिक वेदान्ती था। न वाल्मीकि, वसिष्ठ और रामचन्द्र का बनाया वा कहा सुना है। क्योंकि वे सब वेदानुयायी थे वेद से विरुद्ध न बना सकते और न कह सुन सकते थे।

(प्रश्न) क्या व्यास जी ने जो शारीरक सूत्र बनाये हैं उन में भी जीव ब्रह्म की एकता दीखती है? देखो—

सम्पद्याऽऽविर्भावः स्वेन शब्दात्॥ १॥
ब्राह्मेण जैमिनिरुपन्यासादिभ्यः॥ २॥
चिति तन्मात्रेण तदात्मकत्वादित्यौडुलोमिः॥ ३॥
एवमप्युपन्यासात् पूर्वभावादविरोधं बादरायणः॥ ४॥
अत एव चानन्याधिपतिः॥ ५॥

अर्थात् जीव अपने स्वरूप को प्राप्त होकर प्रकट होता है जो कि पूर्व

ब्रह्मस्वरूप था क्योंकि स्व शब्द से अपने ब्रह्मस्वरूप का ग्रहण होता है॥ १॥

'अयमात्मा अपहतपाप्मा' इत्यादि उपन्यास ऐश्वर्य प्राप्ति पर्य्यन्त हेतुओं से ब्रह्मस्वरूप से जीव स्थित होता है ऐसा जैमिनि आचार्य्य का मत है॥ २॥

और औडुलोमि आचार्य्य तदात्मकस्वरूप निरूपणादि बृहदारण्यक के हेतुरूप के वचनों से चैतन्यमात्र स्वरूप से जीव मुक्ति में स्थित रहता है॥ ३॥

व्यास जी इन्हीं पूर्वोक्त उपन्यासादि ऐश्वर्यप्राप्तिरूप हेतुओं से जीव का ब्रह्मस्वरूप होने में अविरोध मानते हैं॥ ४॥

योगी ऐश्वर्यसहित अपने ब्रह्मस्वरूप को प्राप्त होकर अन्य अधिपति से रहित अर्थात् स्वयम् आप अपना और सब का अधिपतिरूप ब्रह्मस्वरूप से मुक्ति में स्थित रहता है॥ ५॥

(उत्तर) इन सूत्रों का अर्थ इस प्रकार का नहीं किन्तु इन का यथार्थ अर्थ यह है। सुनिये! जब तक जीव अपने स्वकीय शुद्धस्वरूप को प्राप्त, सब मलों से रहित होकर पवित्र नहीं होता तब तक योग से ऐश्वर्य को प्राप्त होकर अपने अन्तर्यामी ब्रह्म को प्राप्त होके आनन्द में स्थित नहीं हो सकता॥ १॥

इसी प्रकार जब पापादि रहित ऐश्वर्ययुक्त योगी होता है तभी ब्रह्म के साथ मुक्ति के आनन्द को भोग सकता है। ऐसा जैमिनि आचार्य का मत है॥ २॥

जब अविद्यादि दोषों से छूट शुद्ध चैतन्यमात्र स्वरूप से जीव स्थिर होता है तभी 'तदात्मकत्व' अर्थात् ब्रह्मस्वरूप के साथ सम्बन्ध को प्राप्त होता है॥ ३॥

जब ब्रह्म के साथ ऐश्वर्य और शुद्ध विज्ञान को जीते ही जीवन्मुक्त होता है तब अपने निर्मल पूर्व स्वरूप को प्राप्त होकर आनन्दित होता है ऐसा व्यासमुनि जी का मत है॥ ४॥

जब योगी का सत्य सङ्कल्प होता है तब स्वयं परमेश्वर को प्राप्त हो कर मुक्तिसुख को पाता है। वहां स्वाधीन स्वतन्त्र रहता है। जैसा संसार में एक प्रधान दूसरा अप्रधान होता है वैसा मुक्ति में नहीं। किन्तु सब मुक्त जीव एक से रहते हैं॥ ५॥ जो ऐसा न हो तो—

नेतरोऽनुपपत्तेः॥ १॥ भेदव्यपदेशाच्च॥ २॥
विशेषणभेदव्यपदेशाभ्यां च नेतरौ॥ ३॥
अस्मिन्नस्य च तद्योगं शास्ति॥ ४॥
अन्तस्तद्धर्मोपदेशात्॥ ५॥
भेदव्यपदेशाच्चान्यः॥ ६॥
गुहां प्रविष्टावात्मानौ हि तद्दर्शनात्॥ ७॥
अनुपपत्तेस्तु न शारीरः॥ ८॥
अन्तर्याम्यधिदैवादिषु तद्धर्मव्यपदेशात्॥ ९॥
शारीरश्चोभयेऽपि हि भेदेनैनमधीयते॥ १०॥ —व्यासमुनिकृतवेदान्तसूत्राणि॥

ब्रह्म से इतर जीव सृष्टिकर्त्ता नहीं है क्योंकि इस अल्प, अल्पज्ञ सामर्थ्यवाले जीव में सृष्टिकर्तृत्व नहीं घट सकता। इससे जीव ब्रह्म नहीं॥ १॥

'रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति' यह उपनिषत् का वचन है।

जीव और ब्रह्म भिन्न हैं क्योंकि इन दोनों का भेद प्रतिपादन किया है। जो ऐसा न होता तो रस अर्थात् आनन्दस्वरूप ब्रह्म को प्राप्त होकर जीव आनन्दस्वरूप होता है यह प्राप्तिविषय ब्रह्म और प्राप्त होने वाले जीव का निरूपण नहीं घट सकता।

इसलिये जीव और ब्रह्म एक नहीं॥ २॥

दिव्यो ह्यमूर्त्तः पुरुषः स बाह्याभ्यन्तरो ह्यजः।
अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रो ह्यक्षरात्परतः परः॥ —मुण्डकोपनिषदि॥

दिव्य, शुद्ध, मूर्त्तिमत्त्वरहित, सब में पूर्ण, बाहर-भीतर निरन्तर व्यापक, अज, जन्म-मरण शरीरधारणादि रहित, श्वास प्रश्वास, शरीर और मन के सम्बन्ध से रहित, प्रकाशस्वरूप इत्यादि परमात्मा के विशेषण और अक्षर नाशरहित प्रकृति से परे अर्थात् सूक्ष्म जीव उससे भी परमेश्वर परे अर्थात् ब्रह्म सूक्ष्म है। प्रकृति और जीवों से ब्रह्म का भेद प्रतिपादनरूप हेतुओं से प्रकृति और जीवों से ब्रह्म भिन्न है॥ ३॥

इसी सर्वव्यापक ब्रह्म में जीव का योग वा जीव में ब्रह्म का योग प्रतिपादन करने से जीव और ब्रह्म भिन्न हैं, क्योंकि योग भिन्न पदार्थों का हुआ करता है॥४॥

इस ब्रह्म के अन्तर्यामी आदि धर्म कथन किये हैं और जीव के भीतर व्यापक होने से व्याप्य जीव ब्रह्म से भिन्न है क्योंकि व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध भी भेद में संघटित होता है॥ ५॥

जैसे परमात्मा जीव से भिन्नस्वरूप है वैसे इन्द्रिय, अन्तःकरण, पृथिवी आदि भूत, दिशा, वायु सूर्यादि दिव्यगुणों के योग से देवता वाच्य विद्वानों से भी परमात्मा भिन्न है॥ ६॥

'गुहां प्रविष्टौ सुकृतस्य लोके' इत्यादि उपनिषदों के वचनों से जीव और परमात्मा भिन्न हैं। वैसा ही उपनिषदों में बहुत ठिकाने दिखलाया है॥ ७॥

'शरीरे भवः शारीरः' शरीरधारी जीव ब्रह्म नहीं है क्योंकि ब्रह्म के गुण, कर्म, स्वभाव जीव में नहीं घटते॥ ८॥

(अधिदैव) सब दिव्य मन आदि इन्द्रियादि पदार्थों (अधिभूत) पृथिव्यादि भूत (अध्यात्म) सब जीवों में परमात्मा अन्तर्यामीरूप से स्थित है क्योंकि उसी परमात्मा के व्यापकत्वादि धर्म सर्वत्र उपनिषदों में व्याख्यात हैं॥ ९॥

शरीरधारी जीव ब्रह्म नहीं है क्योंकि ब्रह्म से जीव का भेद स्वरूप से सिद्ध है॥ १०॥

इत्यादि शारीरक सूत्रों से भी स्वरूप से ब्रह्म और जीव का भेद सिद्ध है। वैसे ही वेदान्तियों का उपक्रम और उपसंहार भी नहीं घट सकता, क्योंकि 'उपक्रम' अर्थात् आरम्भ ब्रह्म से और 'उपसंहार' अर्थात् प्रलय भी ब्रह्म ही में करते हैं। जब दूसरा कोई वस्तु नहीं मानते तो उत्पत्ति और प्रलय भी ब्रह्म के धर्म हो जाते हैं। और उत्पत्ति विनाशरहित ब्रह्म का प्रतिपादन वेदादि सत्यशास्त्रों में किया है। वह नवीन वेदान्तियों पर कोप करेगा। क्योंकि निर्विकार, अपरिणामी, शुद्ध, सनातन निर्भ्रान्तत्वादि विशेषणयुक्त ब्रह्म में विकार, उत्पत्ति और अज्ञान आदि का सम्भव किसी प्रकार नहीं हो सकता। तथा उपसंहार (प्रलय) के होने पर भी ब्रह्म, कारणात्मक जड़ और जीव बराबर बने रहते हैं। इसलिये उपक्रम और उपसंहार की भी इन वेदान्तियों की कल्पना झूठी है। ऐसी अन्य बहुत सी अशुद्ध बातें हैं कि जो शास्त्र और प्रत्यक्षादि प्रमाणों से विरुद्ध हैं।

इस के पश्चात् कुछ जैनियों और कुछ शङ्कराचार्य के अनुयायी लोगों के उपदेश के संस्कार आर्यावर्त्त में फैले थे आपस में खण्डन मण्डन भी चलता था।

शङ्कराचार्य के तीन सौ वर्ष के पश्चात् उज्जैन नगरी में विक्रमादित्य राजा कुछ प्रतापी हुआ। जिस ने सब राजाओं के मध्य प्रवृत्त हुई लड़ाई को मिटा कर

शान्ति स्थापन की। तत्पश्चात् भर्तृहरि राजा काव्यादि शास्त्र और अन्य में भी कुछ-कुछ विद्वान् हुआ। उसने वैराग्यवान् होकर राज्य को छोड़ दिया। विक्रमादित्य के पाँच सौ वर्ष के पश्चात् राजा भोज हुआ। उसने थोड़ा सा व्याकरण और काव्यालङ्कारादि का इतना प्रचार किया कि जिस के राज्य में कालिदास बकरी चराने वाला भी रघुवंश काव्य का कर्त्ता हुआ। राजा भोज के पास जो कोई अच्छा श्लोक बना कर ले जाता था उस को बहुत सा धन देते थे और प्रतिष्ठा होती थी। उस के पश्चात् राजाओं श्रीमानों ने पढ़ना ही छोड़ दिया।

यद्यपि शंकराचार्य्य के पूर्व वाममार्गियों के पश्चात् शैव आदि सम्प्रदायस्थ मतवादी भी हुए थे परन्तु उन का बहुत बल नहीं था। महाराजा विक्रमादित्य से लेके शैवों का बल बढ़ता आया। शैवों में पाशुपतादि बहुत सी शाखा हुई थीं; जैसी वाममार्गियों में दश महाविद्यादि की शाखा हैं। लोगों ने शंकराचार्य को शिव का अवतार ठहराया। उन के अनुयायी संन्यासी भी शैवमत में प्रवृत्त हो गये और वाममार्गियों को भी मिलते रहे। वाममार्गी, देवी जो शिव जी की पत्नी है उसके उपासक और शैव महादेव के उपासक हुए। ये दोनों रुद्राक्ष और भस्म अद्यावधि धारण करते हैं परन्तु जितने वाममार्गी वेदविरोधी हैं वैसे शैव नहीं हैं।

धिक् धिक् कपालं भस्मरुद्राक्षविहीनम्॥ १॥
रुद्राक्षान् कण्ठदेशे दशनपरिमितान्मस्तके विंशती द्वे,
षट् षट् कर्णप्रदेशे करयुगलगतान् द्वादशान्द्वादशैव ।
बाह्वोरिन्दोः कलाभिः पृथगिति गदितमेकमेवं शिखायां,
वक्षस्यष्टाऽधिकं यः कलयति शतकं स स्वयं नीलकण्ठः॥ २॥

इत्यादि बहुत प्रकार के श्लोक इन लोगों ने बनाये और कहने लगे कि जिस के कपाल में भस्म और कण्ठ में रुद्राक्ष नहीं है उस को धिक्कार है। 'तं त्यजेदन्त्यजं यथा' उस को चाण्डाल के तुल्य त्याग करना चाहिये॥ १॥

जो कण्ठ में ३२, शिर में ४०, छः छः कानों में, बारह-बारह करों में, सोलह-सोलह भुजाओं में, १ शिखा में और हृदय में १०८ रुद्राक्ष धारण करता है वह साक्षात् महादेव के सदृश है॥ २॥ ऐसा ही शाक्त भी मानते हैं।

पश्चात् इन वाममार्गी और शैवों ने सम्मति करके भग लिङ्ग का स्थापन किया जिस को जलाधारी और लिङ्ग कहते हैं और उस की पूजा करने लगे। उन निर्लज्जों को तनिक भी लज्जा न आई कि यह पामरपन का काम हम क्यों करते हैं? किसी कवि ने कहा है कि **'स्वार्थी दोषं न पश्यति'** स्वार्थी लोग अपनी स्वार्थसिद्धि करने में दुष्ट कामों को भी श्रेष्ठ मान दोष को नहीं देखते हैं। उसी पाषाणादि मूर्ति और भग लिङ्ग की पूजा में सारे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि सिद्धियां मानने लगे। जब राजा भोज के पश्चात् जैनी लोग अपने मन्दिरों में मूर्त्तिस्थापन करने और दर्शन, स्पर्शन को आने जाने लगे तब तो इन पोपों के चेले भी जैन मन्दिर में जाने आने लगे और उधर पश्चिम में कुछ दूसरों के मत और यवन लोग भी आर्य्यावर्त में आने जाने लगे। तब पोपों ने यह श्लोक बनाया-

न वदेद्यावनीं भाषां प्राणैः कण्ठगतैरपि ।
हस्तिना ताड्यमानोऽपि न गच्छेज्जैनमन्दिरम्॥

चाहे कितना ही दुःख प्राप्त हो और प्राण कण्ठगत अर्थात् मृत्यु का समय भी क्यों न आया हो तो भी यावनी अर्थात् म्लेच्छभाषा मुख से न बोलनी। और

उन्मत्त हस्ती मारने को क्यों न दौड़ा आता हो और जैन के मन्दिर में जाने से प्राण बचता हो तो भी जैन मन्दिर में प्रवेश न करे। किन्तु जैन मन्दिर में प्रवेश कर बचने से हाथी के सामने जाकर मर जाना अच्छा है। ऐसे-ऐसे अपने चेलों को उपदेश करने लगे। जब उन से कोई प्रमाण पूछता था कि तुम्हारे मत में किसी माननीय ग्रन्थ का भी प्रमाण है? तो कहते थे कि हां है। जब वे पूछते थे कि दिखलाओ? तब मार्कण्डेय पुराणादि के वचन पढ़ते और सुनाते थे जैसा कि दुर्गापाठ में देवी का वर्णन लिखा है।

राजा भोज के राज्य में व्यास जी के नाम से मार्कण्डेय और शिवपुराण किसी ने बना कर खड़ा किया था। उसका समाचार राजा भोज को होने से उन पण्डितों को हस्तच्छेदनादि दण्ड दिया और उन से कहा कि जो कोई काव्यादि ग्रन्थ बनावे तो अपने नाम से बनावे; ऋषि मुनियों के नाम से नहीं। यह बात राजा भोज के बनाये सञ्जीवनी नामक इतिहास में लिखी है कि जो ग्वालियर के राज्य 'भिण्ड' नामक नगर के तिवाड़ी ब्राह्मणों के घर में है। जिस को लखुना के रावसाहब और उन के गुमाश्ते रामदयाल चौबे जी ने अपनी आंखों से देखा है। उस में स्पष्ट लिखा है कि व्यास जी ने चार सहस्र चार सौ और उनके शिष्यों ने पांच सहस्र छः सौ श्लोकयुक्त अर्थात् सब दश सहस्र श्लोकों के प्रमाण भारत बनाया था। वह महाराजा विक्रमादित्य के समय में बीस सहस्र, महाराजा भोज कहते हैं कि मेरे पिता जी के समय में पच्चीस और मेरी आधी उमर में तीस सहस्र श्लोकयुक्त महाभारत का पुस्तक मिलता है। जो ऐसे ही बढ़ता चला तो महाभारत का पुस्तक एक ऊंट का बोझा हो जायेगा और ऋषि मुनियों के नाम से पुराणादि ग्रन्थ बनावेंगे तो आर्यावर्त्तीय लोग भ्रमजाल में पड़ वैदिकधर्मविहीन होके भ्रष्ट हो जायेंगे। इस से विदित होता है कि राजा भोज को कुछ-कुछ वेदों का संस्कार था। इन के भोजप्रबन्ध में लिखा है कि—

घट्येकया क्रोशदशैकमश्वः सुकृत्रिमो गच्छति चारुगत्या ।
वायुं ददाति व्यजनं सुपुष्कलं विना मनुष्येण चलत्यजस्त्रम् ॥

राजा भोज के राज्य में और समीप ऐसे-ऐसे शिल्पी लोग थे कि जिन्होंने घोड़े के आकार एक यान यन्त्रकलायुक्त बनाया था कि जो एक कच्ची घड़ी में ग्यारह कोश और एक घण्टे में साढ़े सत्ताईस कोश जाता था। वह भूमि और अन्तरिक्ष में भी चलता था। और दूसरा पंखा ऐसा बनाया था कि विना मनुष्य के चलाये कलायन्त्र के बल से नित्य चला करता और पुष्कल वायु देता था। जो ये दोनों पदार्थ आज तक बने रहते तो यूरोपियन इतने अभिमान में न चढ़ जाते।

जब पोप जी अपने चेलों को जैनियों से रोकने लगे तो भी मन्दिरों में जाने से न रुक सके और जैनियों की कथा में भी लोग जाने लगे। जैनियों के पोप इन पुराणियों के पोपों के चेलों को बहकाने लगे। तब पुराणियों ने विचारा कि इस का कोई उपाय करना चाहिये; नहीं तो अपने चेले जैनी हो जायेंगे। पश्चात् पोपों ने यही सम्मति की कि जैनियों के सदृश अपने भी अवतार, मन्दिर, मूर्त्ति और कथा के पुस्तक बनावें।इन लोगों ने जैनियों के चौबीस तीर्थंकरों के सदृश चौबीस अवतार, मन्दिर और मूर्त्तियां बनाईं। और जैसे जैनियों के आदि और उत्तर-पुराणादि हैं वैसे अठारह पुराण बनाने लगे।

राजा भोज के डेढ़ सौ वर्ष के पश्चात् वैष्णवमत का आरम्भ हुआ। एक

शठकोप नामक कंजरवर्ण में उत्पन्न हुआ था, उस से थोड़ा सा चला। उस के पश्चात् मुनिवाहन भंगी-कुलोत्पन्न और तीसरा यावनाचार्य्य यवनकुलोत्पन्न आचार्य्य हुआ। तत्पश्चात् ब्राह्मण कुलज चौथा रामानुज हुआ उस ने अपना मत फैलाया। शैवों ने शिवपुराणादि, शाक्तों ने देवीभागवतादि वैष्णवों ने विष्णुपुराणादि बनाये। उन में अपना नाम इसलिये नहीं धरा कि हमारे नाम से बनेंगे तो कोई प्रमाण न करेगा। इसलिये व्यास आदि ऋषि मुनियों के नाम धरके पुराण बनाये। नाम भी इन का वास्तव में नवीन रखना चाहिये था परन्तु जैसे कोई दरिद्र अपने बेटे का नाम महाराजाधिराज और आधुनिक पदार्थ का नाम सनातन रख दे तो क्या आश्चर्य है? अब इन के आपस के जैसे झगड़े हैं; वैसे पुराणों में भी धरे हैं।

देखो! देवीभागवत में 'श्री' नामा एक देवी स्त्री जो श्रीपुर की स्वामिनी लिखी है; उसी ने सब जगत् को बनाया और ब्रह्मा, विष्णु, महादेव को भी उसी ने रचा। जब उस देवी की इच्छा हुई तब उसने अपना हाथ घिसा। उस के हाथ में एक छाला हुआ। उस में से ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई। उस से देवी ने कहा कि तू मुझ से विवाह कर। ब्रह्मा ने कहा कि तू मेरी माता है मैं तुझ से विवाह नहीं कर सकता। ऐसा सुन कर माता को क्रोध चढ़ा और लड़के को भस्म कर दिया। और फिर हाथ घिस के उसी प्रकार दूसरा लड़का उत्पन्न किया। उस का नाम विष्णु रक्खा। उस से भी उसी प्रकार कहा। उसने न माना तो उस को भी भस्म कर दिया। पुनः उसी प्रकार तीसरे लड़के को उत्पन्न किया। उस का नाम महादेव रक्खा और उस से कहा कि मुझ से विवाह कर। महादेव बोला कि मैं तुझ से विवाह नहीं कर सकता। तू दूसरी स्त्री का शरीर धारण कर। वैसा ही देवी ने किया। तब महादेव बोला कि यह दो ठिकाने राख सी क्या पड़ी है? देवी ने कहा कि ये दोनों तेरे भाई हैं। इन्होंने मेरी आज्ञा न मानी इसलिये भस्म कर दिये। महादेव ने कहा कि मैं अकेला क्या करूँगा, इन को जिला दे और दो स्त्री और उत्पन्न कर, तीनों का विवाह तीनों से होगा। ऐसा ही देवी ने किया। फिर तीनों का तीनों के साथ विवाह हुआ। वाह रे! माता से विवाह न किया और बहिन से कर लिया। क्या इस को उचित समझना चाहिये? पश्चात् इन्द्रादि को उत्पन्न किया। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और इन्द्र इन को पालकी के उठाने वाले कहार बनाया, इत्यादि गपोड़े लम्बे चौड़े मनमाने लिखे हैं।

कोई उन से पूछे कि उस देवी का शरीर और उस श्रीपुर का बनाने वाला और देवी के पिता माता कौन थे? जो कहो कि देवी अनादि है तो जो संयोगजन्य वस्तु है वह अनादि कभी नहीं हो सकता। जो पुत्र माता से विवाह करने में डरे तो भाई बहिन के विवाह में कौन सी अच्छी बात निकलती है? जैसी इस देवीभागवत में महादेव, विष्णु और ब्रह्मादि की क्षुद्रता और देवी की बड़ाई लिखी है इसी प्रकार शिवपुराण में देवी आदि की बहुत क्षुद्रता लिखी है। अर्थात् ये सब महादेव के दास और महादेव सब का ईश्वर है। जो रुद्राक्ष अर्थात् एक वृक्ष के फल की गोठली और राख धारण करने से मुक्ति मानते हैं तो राख में लोटनेहारे गदहा आदि पशु और घुंघुंची आदि के धारण करने वाले भील कंजर आादि मुक्ति को जावें और सूअर, कुत्ते, गधा आदि पशु राख में लोटने वालों की मुक्ति क्यों नहीं होती?

(प्रश्न) कालाग्निरुद्रोपनिषद् में भस्म लगाने का विधान लिखा है। वह क्या झूठा है? और **'त्र्यायुषं जमदग्नेः०'** यजुर्वेदवचन। इत्यादि वेदमन्त्रों से भी भस्म

धारण का विधान और पुराणों में रुद्र की आंखों के अश्रुपात से जो वृक्ष हुआ उसी का नाम रुद्राक्ष है। इसीलिये उसके धारण में पुण्य लिखा है। एक भी रुद्राक्ष धारण करे तो सब पापों से छूट स्वर्ग को जाय। यमराज और नरक का डर न रहै।

(उत्तर) कालाग्निरुद्रोपनिषद् किसी रखोड़िया मनुष्य अर्थात् राख धारण करने वाले ने बनाई है। क्योंकि **'याऽस्य प्रथमा रेखा सा भूर्लोकः'** इत्यादि वचन उस में अनर्थक हैं। जो प्रतिदिन हाथ से बनाई रेखा है वह भूलोक वा इस का वाचक कैसे हो सकते हैं। और जो **'त्र्यायुषं जमदग्नेः०'** इत्यादि मन्त्र हैं वे भस्म वा त्रिपुण्ड्र धारण के वाची नहीं किन्तु **'चक्षुर्वै जमदग्निः'** शतपथ। हे परमेश्वर! मेरे नेत्र की ज्योति (त्र्यायुषम्) तिगुणी अर्थात् तीन सौ वर्ष पर्यन्त रहै और मैं भी ऐसे धर्म के काम करूँ जिससे दृष्टिनाश न हो।

भला यह कितनी बड़ी मूर्खता की बात है कि आंख के अश्रुपात से भी वृक्ष उत्पन्न हो सकता है? क्या परमेश्वर के सृष्टिक्रम को कोई अन्यथा कर सकता है? जैसा जिस वृक्ष का बीज परमात्मा ने रचा है उसी से वह वृक्ष उत्पन्न हो सकता है अन्यथा नहीं। इससे जितना रुद्राक्ष, भस्म, तुलसी, कमलाक्ष, घास, चन्दन आदि को कण्ठ में धारण करना है वह सब जंगली पशुवत् मनुष्य का काम है। ऐसे वाममार्गी और शैव बहुत मिथ्याचारी, विरोधी और कर्त्तव्य कर्म के त्यागी होते हैं। उन में जो कोई श्रेष्ठ पुरुष है वह इन बातों का विश्वास न करके अच्छे कर्म करता है। जो रुद्राक्ष भस्म धारण से यमराज के दूत डरते हैं तो पुलिस के सिपाही भी डरते होंगे!! जब रुद्राक्ष भस्म धारण करने वालों से कुत्ता, सिंह, सर्प्प, बिच्छू, मक्खी और मच्छर आदि भी नहीं डरते तो न्यायाधीश के गण क्यों डरेंगे?

(प्रश्न) वाममार्गी और शैव तो अच्छे नहीं परन्तु वैष्णव तो अच्छे हैं?

(उत्तर) ये भी वेदविरोधी होने से उनसे भी अधिक बुरे हैं।

(प्रश्न) **'नम॑स्ते रुद्र म॒न्यवे॑'। 'वै॒ष्ण॒वम॑सि॒'। 'वा॒म॒नाय॑ च॒'। 'ग॒णानां॑ त्वा ग॒णप॑तिꣳ हवामहे'। 'भग॑वती॒ भूयाः'। 'सूर्य॒ आ॒त्मा जग॑तस्त॒स्थुष॑श्च'** इत्यादि वेद-प्रमाणों से शैवादि मत सिद्ध होते हैं; पुनः क्यों खण्डन करते हो?

(उत्तर) इन वचनों से शैवादि सम्प्रदाय सिद्ध नहीं होते। क्योंकि 'रुद्र' परमेश्वर, प्राणादि वायु, जीव, अग्नि आदि का नाम है। जो क्रोधकर्त्ता रुद्र अर्थात् दुष्टों को रुलाने वाले परमात्मा को नमस्कार करना, प्राण और जाठराग्नि को अन्न देना, (**नम इति अन्ननाम** निघं० २। ७)। जो मङ्गलकारी सब संसार का अत्यन्त कल्याण करने वाला है; उस परमात्मा को नमस्कार करना चाहिये। **'शिवस्य परमेश्वरस्यायं भक्तः शैवः'। 'विष्णोः परमात्मनोऽयं भक्तो वैष्णवः'। 'गणपतेः सकलजगत्स्वामिनोऽयं सेवको गाणपतः'। 'भगवत्या वाण्या अयं सेवको भागवतः'। 'सूर्यस्य चराचरात्मनोऽयं सेवकः सौरः'** ये सब रुद्र, शिव, विष्णु, गणपति, सूर्यादि परमेश्वर के और भगवती सत्यभाषणयुक्त वाणी का नाम है। इस में विना समझे ऐसा झगड़ा मचाया है। जैसे—

एक किसी वैरागी के दो चेले थे। वे प्रतिदिन गुरु के पग दाबा करते थे। एक ने दाहिने पग और दूसरे ने बायें पग की सेवा करनी बांट ली थी। एक दिन

ऐसा हुआ कि एक चेला कहीं बाजार हाट को चला गया और दूसरा अपने सेव्य पग की सेवा कर रहा था। इतने में गुरु जी ने करवट फेरा तो उसके पग पर दूसरे गुरुभाई का सेव्य पग पड़ा। उस ने ले डण्डा पग पर धर मारा। गुरु ने कहा कि अरे दुष्ट! तू ने यह क्या किया? चेला बोला कि मेरे सेव्य पग के ऊपर यह पग क्यों आ चढ़ा? इतने में दूसरा चेला जो कि बाजार हाट को गया था; आ पहुंचा। वह भी अपने सेव्य पग की सेवा करने लगा। देखा तो पग सूजा पड़ा है। बोला कि गुरु जी ! यह मेरे सेव्य पग में क्या हुआ? गुरु ने सब वृत्तान्त सुना दिया। वह भी मूर्ख न बोला न चाला। चुपचाप डण्डा उठा के बड़े बल से गुरु के दूसरे पग में मारा तो गुरु ने उच्चस्वर से पुकार मचाई। तब तो दोनों चेले डण्डा लेके पड़े और गुरु के पगों को पीटने लगे। तब तो बड़ा कोलाहल मचा और लोग सुन कर आये। कहने लगे कि साधु जी! क्या हुआ? उन में से किसी बुद्धिमान् पुरुष ने साधु को छुड़ा के पश्चात् उन मूर्ख चेलों को उपदेश किया कि देखो! ये दोनों पग तुम्हारे गुरु के हैं। उन दोनों की सेवा करने से उसी को सुख पहुंचता और दुःख देने से भी उसी एक को दुःख होता है।

जैसे एक गुरु की सेवा में चेलाओं ने लीला की इसी प्रकार जो एक अखण्ड, सच्चिदानन्दानन्तस्वरूप परमात्मा के विष्णु, रुद्रादि अनेक नाम हैं। इन नामों का अर्थ जैसा कि प्रथम समुल्लास में प्रकाश कर आये हैं उस सत्यार्थ को न जान कर शैव, शाक्त, वैष्णवादि सम्प्रदायी लोग परस्पर एक दूसरे के नाम की निन्दा करते हैं। मन्दमति तनिक भी अपनी बुद्धि को फैला कर नहीं विचारते हैं कि ये सब विष्णु, रुद्र, शिव आदि नाम एक अद्वितीय सर्वनियन्ता, सर्वान्तर्यामी, जगदीश्वर के अनेक गुण, कर्म, स्वभावयुक्त होने से उसी के वाचक हैं। भला क्या ऐसे लोगों पर ईश्वर का कोप न होता होगा? अब देखिये चक्राङ्कित वैष्णवों की अद्‌भुत माया—

तापः पुण्ड्रं तथा नाम माला मन्त्रस्तथैव च ।
अमी हि पञ्च संस्काराः परमैकान्तहेतवः॥ १॥
अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते । इति श्रुतेः॥

अर्थात् (तापः) शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म के चिह्नों को अग्नि में तपा के भुजा के मूल में दाग देकर पश्चात् दुग्धयुक्त पात्र में बुझाते हैं और कोई उस दूध को पी भी लेते हैं। अब देखिये! प्रत्यक्ष ही मनुष्य के मांस का भी स्वाद उस में आता होगा। ऐसे-ऐसे कर्मों से परमेश्वर को प्राप्त होने की आशा करते हैं और कहते हैं कि विना शङ्ख चक्रादि से शरीर तपाये जीव परमेश्वर को प्राप्त नहीं होता क्योंकि वह (आमः) अर्थात् कच्चा है। और जैसे राज्य के चपरास आदि चिह्नों के होने से राजपुरुष जान उस से सब लोग डरते हैं वैसे ही विष्णु के शङ्ख चक्रादि आयुधों के चिह्न देख कर यमराज और उनके गण डरते हैं। और कहते हैं कि—

दोहा— बाना बड़ा दयाल का, तिलक छाप और माल।
यम डरपै कालू कहे, भय माने भूपाल॥

अर्थात् भगवान् का बाना तिलक, छाप और माला धारण करना बड़ा है। जिस से यमराज और राजा भी डरते हैं। (पुण्ड्रम्) त्रिशूल के सदृश ललाट में चित्र निकालना (नाम) नारायणदास विष्णुदास अर्थात् दासशब्दान्त नाम रखना (माला) कमलगट्टे की रखना और पांचवां (मन्त्र) जैसे—

ओं नमो नारायणाय॥ १॥

यह इन्होंने साधारण मनुष्यों के लिये मन्त्र बना रक्खा है। तथा—

श्रीमन्नारायणचरणं शरणं प्रपद्ये॥ १॥
श्रीमते नारायणाय नमः॥ २॥
श्रीमते रामानुजाय नमः॥ ३॥

इत्यादि मन्त्र धनाढ्य और माननीयों के लिये बना रक्खे हैं। देखिये यह भी एक दुकान ठहरी! जैसा मुख वैसा तिलक। इन पांच संस्कारों को चक्राङ्कित मुक्ति के हेतु मानते हैं। इन मन्त्रों का अर्थ—मैं नारायण को नमस्कार करता हूं॥ १॥

और मैं लक्ष्मीयुक्त नारायण के चरणारविन्द के शरण को प्राप्त होता हूं॥ २॥

और श्रीयुत नारायण को नमस्कार करता हूं अर्थात् जो शोभायुक्त नारायण है उस को मेरा नमस्कार होवे॥ ३॥

जैसे वाममार्गी पांच मकार मानते हैं वैसे चक्राङ्कित पांच संस्कार मानते हैं और अपने शङ्ख चक्र से दाग देने के लिये जो वेदमन्त्र का प्रमाण रक्खा है। उस का इस प्रकार का पाठ और अर्थ है—

प॒वित्रं॑ ते॒ वित॑तं ब्रह्मणस्पते प्र॒भुर्गात्रा॑णि॒ पर्ये॑षि वि॒श्वतः॑ ।
अत॑प्ततनू॒र्न तदा॒मो अ॑श्नुते शृ॒तास॒ इद्वह॑न्त॒स्तत्समा॑शत ॥१॥
तपो॑ष्प॒वित्रं॒ वित॑तं दि॒वस्प॒दे ॥२॥ —ऋ० म० ९। सू० ८३। मन्त्र १, २॥

हे ब्रह्माण्ड और वेदों के पालन करने वाले प्रभु सर्वसामर्थ्ययुक्त सर्वशक्तिमन्! आपने अपनी व्याप्ति से संसार के सब अवयवों को व्याप्त कर रक्खा है। उस आपका जो व्यापक पवित्र स्वरूप है उस को ब्रह्मचर्य, सत्यभाषण, शम, दम, योगाभ्यास, जितेन्द्रिय, सत्संगादि तपश्चर्य्या से रहित जो अपरिपक्व आत्मा अन्तःकरणयुक्त है वह उस तेरे स्वरूप को प्राप्त नहीं होता और जो पूर्वोक्त तप से शुद्ध हैं। वे ही इस तप का आचरण करते हुए उस तेरे शुद्धस्वरूप को अच्छे प्रकार प्राप्त होते हैं॥ १॥

जो प्रकाशस्वरूप परमेश्वर की सृष्टि में विस्तृत पवित्राचरणरूप तप करते हैं वे ही परमात्मा को प्राप्त होने में योग्य होते हैं॥ २॥

अब विचार कीजिये कि रामानुजीयादि लोग इस मन्त्र से चक्राङ्कित होना सिद्ध क्योंकर करते हैं? भला कहिये वे विद्वान् थे वा अविद्वान्? जो कहो कि विद्वान् थे तो ऐसा असम्भावित अर्थ इस मन्त्र का क्यों करते? क्योंकि इस मन्त्र में **'अतप्ततनूः'** शब्द है किन्तु **'अतप्तभुजैकदेशः'** नहीं। पुनः **'अतप्ततनूः'** यह नखशिखाग्रपर्यन्त समुदाय अर्थ है। इस प्रमाण करके अग्नि ही से तपाना चक्राङ्कित लोग स्वीकार करें तो अपने-अपने शरीर को भाड़ में झोंक के सब शरीर को जलावें तो भी इस मन्त्र के अर्थ से विरुद्ध है क्योंकि इस मन्त्र में सत्यभाषणादि पवित्र कर्म करना तप लिया है।

ऋतं तपः सत्यं तपो दमस्तपः स्वाध्यायस्तपः॥ —तैत्तिरीय०॥

इत्यादि तप कहाता है। अर्थात् (ऋतं तपः) यथार्थ शुद्धभाव, सत्य मानना, सत्य बोलना, सत्य करना, मन को अधर्म में न जाने देना, बाह्य इन्द्रियों को अन्यायाचरणों में जाने से रोकना अर्थात् शरीर इन्द्रियों और मन से शुभ कर्मों का आचरण करना, वेदादि सत्य विद्याओं का पढ़ना पढ़ाना, वेदानुसार आचरण करना आदि उत्तम धर्मयुक्त कर्मों का नाम तप है। धातु को तपा के चमड़ी को जलाना तप नहीं कहाता।

देखो! चक्राङ्कित लोग अपने को बड़े वैष्णव मानते हैं परन्तु अपनी परम्परा और कुकर्म की ओर ध्यान नहीं देते कि प्रथम इन का मूलपुरुष 'शठकोप' हुआ कि जो चक्राङ्कितों ही के ग्रन्थों और भक्तमाल ग्रन्थ जो नाभा डूम ने बनाया है। उनमें लिखा है—

विक्रीय शूर्पं विचचार योगी॥

इत्यादि वचन चक्राङ्कितों के ग्रन्थों में लिखे हैं। शठकोप योगी सूप को बना, बेच कर, विचरता था अर्थात् कंजर जाति में उत्पन्न हुआ था। जब उस ने ब्राह्मणों से पढ़ना वा सुनना चाहा होगा तब ब्राह्मणों ने तिरस्कार किया होगा। उस ने ब्राह्मणों के विरुद्ध सम्प्रदाय तिलक चक्राङ्कित आदि शास्त्रविरुद्ध मनमानी बातें चलाई होंगी। उस का चेला 'मुनिवाहन' जो कि चाण्डाल वर्ण में उत्पन्न हुआ था। उस का चेला 'यावनाचार्य' जो कि यवनकुलोत्पन्न था जिस का नाम बदल के कोई-कोई 'यामुनाचार्य' भी कहते हैं। उन के पश्चात् 'रामानुज' ब्राह्मणकुल में उत्पन्न होकर चक्राङ्कित हुआ। उसके पूर्व कुछ भाषा के ग्रन्थ बनाये थे। रामानुज ने कुछ संस्कृत पढ़ के संस्कृत में श्लोकबद्ध ग्रन्थ और शारीरक सूत्र और उपनिषदों की टीका शङ्कराचार्य की टीका से विरुद्ध बनाई। और शङ्कराचार्य की बहुत सी निन्दा की।

जैसा शङ्कराचार्य का मत है कि अद्वैत अर्थात् जीव ब्रह्म एक ही हैं दूसरी कोई वस्तु वास्तविक नहीं, जगत् प्रपञ्च, सब मिथ्या मायारूप अनित्य है। इस से विरुद्ध रामानुज का जीव ब्रह्म और माया तीनों नित्य हैं। यहां शङ्कराचार्य्य का मत ब्रह्म से अतिरिक्त जीव और कारण वस्तु का न मानना अच्छा नहीं। और रामानुज इस अंश में, जो कि विशिष्टाद्वैत जीव और मायासहित परमेश्वर एक है यह तीन का मानना और अद्वैत का कहना सर्वथा व्यर्थ है और ईश्वर के आधीन परतन्त्र जीव को मानना, कण्ठी, तिलक, माला मूर्त्तिपूजनादि पाखण्ड मत चलाने आदि बुरी बातें चक्राङ्कित आदि में हैं। जैसे चक्राङ्कित आदि वेदविरोधी हैं; वैसे शङ्कराचार्य्य के मत के नहीं।

(प्रश्न) मूर्त्तिपूजा कहां से चली?

(उत्तर) जैनियों से

(प्रश्न) जैनियों ने कहां से चलाई?

(उत्तर) अपनी मूर्खता से।

(प्रश्न) जैनी लोग कहते हैं कि शान्त ध्यानावस्थित बैठी हुई मूर्त्ति देख के अपने जीव का भी शुभ परिणाम वैसा ही होता है।

(उत्तर) जीव चेतन और मूर्त्ति जड़। क्या मूर्त्ति के सदृश जीव भी जड़ हो जायगा? यह मूर्त्तिपूजा केवल पाखण्ड मत है; जैनियों ने चलाई है। इसलिये इन का खण्डन १२वें समुल्लास में करेंगे।

(प्रश्न) शाक्त आदि ने मूर्त्तियों में जैनियों का अनुकरण नहीं किया है क्योंकि जैनियों की मूर्त्तियों के सदृश वैष्णवादि की मूर्त्तियां नहीं हैं।

(उत्तर) हां! यह ठीक है। जो जैनियों के तुल्य बनाते तो जैनमत में मिल जाते। इसलिये जैनों की मूर्त्तियों से विरुद्ध बनाईं, क्योंकि जैनों से विरोध करना इन का काम और इन से विरोध करना मुख्य उन का काम था। जैसे जैनों ने मूर्त्तियां नंगी, ध्यानावस्थित और विरक्त मनुष्य के समान बनाई हैं; उन से विरुद्ध वैष्णवादि ने यथेष्ट शृङ्गारित स्त्री के सहित रंग राग भोग विषयासक्ति सहिताकार खड़ी और

बैठी हुई बनाई हैं। जैनी लोग बहुत से शङ्ख घण्टा घरियार आदि बाजे नहीं बजाते। ये लोग बड़ा कोलाहल करते हैं। तब तो ऐसी लीला के रचने से वैष्णवादि सम्प्रदायी पोपों के चेले जैनियों के जाल से बच के इन की लीला में आ फंसे और बहुत से व्यासादि महर्षियों के नाम से मनमानी असम्भव गाथायुक्त ग्रन्थ बनाये। उन का नाम 'पुराण' रख कर कथा भी सुनाने लगे। और फिर ऐसी-ऐसी विचित्र माया रचने लगे कि पाषाण की मूर्त्तियां बनाकर गुप्त कहीं पहाड़ वा जंगलादि में धर आये वा भूमि में गाड़ दीं। पश्चात् अपने चेलों में प्रसिद्ध किया कि मुझ को रात्रि को स्वप्न में महादेव, पार्वती, राधा, कृष्ण, सीता, राम वा लक्ष्मी, नारायण और भैरव, हनुमान् आदि ने कहा है कि हम अमुक-अमुक ठिकाने हैं। हम को वहां से ला, मन्दिर में स्थापन कर और तू ही हमारा पुजारी होवे तो हम मनोवाञ्छित फल देवें।

जब आंख के अन्धे और गांठ के पूरे लोगों ने पोप जी की लीला सुनी तब तो सच ही मान ली। और उन से पूछा कि ऐसी वह मूर्त्ति कहां पर है? तब तो पोप जी बोले कि अमुक पहाड़ वा जंगल में है चलो मेरे साथ दिखला दूं। तब तो वे अन्धे उस धूर्त्त के साथ चलके वहां पहुंच कर देखा। आश्चर्य होकर उस पोप के पग में गिर कहा कि आपके ऊपर इस देवता की बड़ी ही कृपा है। अब आप ले चलिये और हम मन्दिर बनवा देवेंगे। उस में इस देवता की स्थापना कर आप ही पूजा करना। और हम लोग भी इस प्रतापी देवता के दर्शन पर्सन करके मनोवाञ्छित फल पावेंगे। इसी प्रकार जब एक ने लीला रची तब तो उस को देख सब पोप लोगों ने अपनी जीविकार्थ छल कपट से मूर्त्तियां स्थापन कीं।

(प्रश्न) परमेश्वर निराकार है वह ध्यान में नहीं आ सकता इसलिये अवश्य मूर्त्ति होनी चाहिये। भला जो कुछ भी नहीं करे तो मूर्त्ति के सम्मुख जा, हाथ जोड़ परमेश्वर का स्मरण करते और नाम लेते हैं, इस में क्या हानि है?

(उत्तर) जब परमेश्वर निराकार, सर्वव्यापक है तब उस की मूर्त्ति ही नहीं बन सकती और जो मूर्त्ति के दर्शनमात्र से परमेश्वर का स्मरण होवे तो परमेश्वर के बनाये पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति आदि अनेक पदार्थ, जिन में ईश्वर ने अद्भुत रचना की है; क्या ऐसी रचनायुक्त पृथिवी पहाड़ आदि परमेश्वर रचित महामूर्त्तियां कि जिन पहाड़ आदि से वे मनुष्यकृत मूर्त्तियाँ बनती हैं उन को देख कर परमेश्वर का स्मरण नहीं हो सकता? जो तुम कहते हो कि मूर्त्ति के देखने से परमेश्वर का स्मरण होता है यह तुम्हारा कथन सर्वथा मिथ्या है। और जब वह मूर्त्ति सामने न होगी तो परमेश्वर के स्मरण न होने से मनुष्य एकान्त पाकर चोरी जारी आदि कुकर्म करने में प्रवृत्त भी हो सकता है। क्योंकि वह जानता है कि इस समय यहाँ मुझे कोई नहीं देखता। इसलिये वह अनर्थ करे विना नहीं चूकता। इत्यादि अनेक दोष पाषाणादि मूर्त्तिपूजा करने से सिद्ध होते हैं।

अब देखिये! जो पाषाणादि मूर्त्तियों को न मान कर सर्वदा, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, न्यायकारी परमात्मा को सर्वत्र जानता और मानता है वह पुरुष सर्वत्र, सर्वदा परमेश्वर को सब के बुरे भले कर्मों का द्रष्टा जान कर एक क्षणमात्र भी परमात्मा से अपने को पृथक् न जान के कुकर्म करना तो कहां रहा किन्तु मन में कुचेष्टा भी नहीं कर सकता। क्योंकि वह जानता है, जो मैं मन, वचन और कर्म से भी कुछ बुरा काम करूँगा तो इस अन्तर्यामी के न्याय से विना दण्ड पाये

कदापि न बचूंगा। और नामस्मरणमात्र से कुछ भी फल नहीं होता। जैसा कि मिशरी–मिशरी कहने से मुंह मीठा और नीम–नीम कहने से कडुवा नहीं होता किन्तु जीभ से चाखने ही से मीठा वा कडुवापन जाना जाता है।

(प्रश्न) क्या नाम लेना सर्वथा मिथ्या है जो सर्वत्र पुराणों में नामस्मरण का बड़ा माहात्म्य लिखा है?

(उत्तर) नाम लेने की तुम्हारी रीति उत्तम नहीं। जिस प्रकार तुम नामस्मरण करते हो वह रीति झूठी है

(प्रश्न) हमारी कैसी रीति है?

(उत्तर) वेदविरुद्ध।

(प्रश्न) भला अब आप हम को वेदोक्त नामस्मरण की रीति बतलायें?

(उत्तर) नामस्मरण इस प्रकार करना चाहिये– जैसे **'न्यायकारी'** ईश्वर का एक नाम है। इस नाम से जो इस का अर्थ है कि जैसे पक्षपात रहित होकर परमात्मा सब का यथावत् न्याय करता है वैसे उस को ग्रहण कर न्याययुक्त व्यवहार सर्वदा करना; अन्याय कभी न करना। इस प्रकार एक नाम से भी मनुष्य का कल्याण हो सकता है।

(प्रश्न) हम भी जानते हैं कि परमेश्वर निराकार है परन्तु उस ने शिव, विष्णु, गणेश, सूर्य और देवी आदि के शरीर धारण करके राम, कृष्णादि अवतार लिये। इस से उसकी मूर्त्ति बनती है; क्या यह भी बात झूठी है?

(उत्तर) हां–हां झूठी। क्योंकि **'अज एकपात्' 'अकायम्'** इत्यादि विशेषणों से परमेश्वर को जन्ममरण और शरीरधारणरहित वेदों में कहा है तथा युक्ति से भी परमेश्वर का अवतार कभी नहीं हो सकता क्योंकि जो आकाशवत् सर्वत्र व्यापक, अनन्त और सुख, दुःख, दृश्यादि गुणरहित है वह एक छोटे से वीर्य्य, गर्भाशय और शरीर में क्योंकर आ सकता है? आता जाता वह है कि जो एकदेशीय हो। और जो अचल, अदृश्य, जिस के विना एक परमाणु भी खाली नहीं है; उस का अवतार कहना जानो वन्ध्या के पुत्र का विवाह कर उस के पौत्र के दर्शन करने की बात कहना है।

(प्रश्न) जब परमेश्वर व्यापक है तो मूर्त्ति में भी है। पुनः चाहें किसी पदार्थ में भावना करके पूजा करना अच्छा क्यों नहीं? देखो–

न काष्ठे विद्यते देवो न पाषाणे न मृण्मये।
भावे हि विद्यते देवस्तस्माद्भावो हि कारणम्॥

परमेश्वर देव न काष्ठ, न पाषाण, न मृत्तिका से बनाये पदार्थों में है किन्तु परमेश्वर तो भाव में विद्यमान है। जहां भाव करें वहां ही परमेश्वर सिद्ध होता है।

(उत्तर) जब परमेश्वर सर्वत्र व्यापक है तो किसी एक वस्तु में परमेश्वर की भावना करना अन्यत्र न करना यह ऐसी बात है कि जैसी चक्रवर्ती राजा को सब राज्य की सत्ता से छुड़ा के एक छोटी सी झोंपड़ी का स्वामी मानना। देखो! यह कितना बड़ा अपमान है? वैसा तुम परमेश्वर का भी अपमान करते हो। जब व्यापक मानते हो तो वाटिका में से पुष्पपत्र तोड़ के क्यों चढ़ाते? चन्दन घिस के क्यों लगाते? धूप को जला के क्यों देते ? घण्टा, घरियाल, झांज, पखाजों को लकड़ी से कूटना पीटना क्यों करते हो? तुम्हारे हाथों में है, क्यों जोड़ते? शिर में है, क्यों शिर नमाते? अन्न, जलादि में है, क्यों नैवेद्य धरते? जल में है, स्नान

क्यों कराते? क्योंकि उन सब पदार्थों में परमात्मा व्यापक है।

और तुम व्यापक की पूजा करते हो वा व्याप्य की? जो व्यापक की करते हो तो पाषाण लकड़ी आदि पर चन्दन पुष्पादि क्यों चढ़ाते हो। और जो व्याप्य की करते हो तो हम परमेश्वर की पूजा करते हैं, ऐसा झूठ क्यों बोलते हो? हम पाषाणादि के पुजारी हैं; ऐसा सत्य क्यों नहीं बोलते?

अब कहिये 'भाव' सच्चा है वा झूठा? जो कहो सच्चा है तो तुम्हारे भाव के आधीन होकर परमेश्वर बद्ध हो जायगा और तुम मृत्तिका में सुवर्ण, रजतादि; पाषाण में हीरा, पन्ना आदि; समुद्रफेन में मोती, जल में घृत, दुग्ध, दधि आदि और धूलि में मैदा, शक्कर आदि की भावना करके उन को वैसे क्यों नहीं बनाते हो? तुम लोग दुःख की भावना कभी नहीं करते; वह क्यों होता? और सुख की भावना सदैव करते हो; वह क्यों नहीं प्राप्त होता? अन्धा पुरुष नेत्र की भावना करके क्यों नहीं देखता? मरने की भावना नहीं करते; क्यों मर जाते हो? इसलिये तुम्हारी भावना सच्ची नहीं। क्योंकि जैसे में वैसी करने का नाम भावना कहते हैं। जैसे अग्नि में अग्नि, जल में जल जानना और जल में अग्नि, अग्नि में जल समझना अभावना है। क्योंकि जैसे को वैसा जानना ज्ञान और अन्यथा जानना अज्ञान है। इसलिये तुम अभावना को भावना और भावना को अभावना कहते हो।

(प्रश्न) अजी! जब तक वेद मन्त्रों से आवाहन नहीं करते तब तक देवता नहीं आता और आवाहन करने से झट आता और विसर्जन करने से चला जाता है।

(उत्तर) जो मन्त्र को पढ़ कर आवाहन करने से तब तक देवता आ जाता है तो मूर्त्ति चेतन क्यों नहीं हो जाती? और विसर्जन करने से चला जाता है तो वह कहां से आता और कहां जाता है?

सुनो भाई! पूर्ण परमात्मा न आता और न जाता है। जो तुम मन्त्रबल से परमेश्वर को बुला लेते हो तो उन्हीं मन्त्रों से अपने मरे हुए पुत्र के शरीर में जीव को क्यों नहीं बुला लेते? और शत्रु के शरीर में जीवात्मा का विसर्जन करके क्यों नहीं मार सकते?

सुनो भाई भोले लोगो! ये पोप जी तुम को ठग कर अपना प्रयोजन सिद्ध करते हैं? वेदों में पाषाणादि मूर्त्तिपूजा और परमेश्वर के आवाहन विसर्जन करने का एक अक्षर भी नहीं है।

(प्रश्न) प्राणा इहागच्छन्तु सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा।
आत्मेहागच्छतु सुखं चिर तिष्ठतु स्वाहा।
इन्द्रियाणीहागच्छन्तु सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा॥

इत्यादि वेदमन्त्र हैं क्यों कहते हो नहीं हैं?

(उत्तर) अरे भाई! बुद्धि को थोड़ी सी तो अपने काम में लाओ! ये सब कपोल-कल्पित वाममार्गियों की वेदविरुद्ध तन्त्रग्रन्थों की पोपरचित पंक्तियां हैं; वेदवचन नहीं।

(प्रश्न) क्या तन्त्र झूठा है?

(उत्तर) हां! सर्वथा झूठा है। जैसे आवाहन, प्राणप्रतिष्ठादि पाषाणादि मूर्त्ति-विषयक वेदों में एक मन्त्र भी नहीं वैसे **'स्नानं समर्पयामि'** इत्यादि वचन भी नहीं है। अर्थात् इतना भी नहीं है कि **'पाषाणादिमूर्त्तिं रचयित्वा मन्दिरेषु**

संस्थाप्य गन्धादिभिरर्चयेत् ।' अर्थात् पाषाण की मूर्त्ति बना, मन्दिरों में स्थापन कर, चन्दन अक्षतादि से पूजे। ऐसा लेशमात्र भी नहीं।

(प्रश्न) जो वेदों में विधि नहीं तो खण्डन भी नहीं है। और जो खण्डन है तो 'प्राप्तौ सत्यां निषेधः' मूर्त्ति के होने ही से खण्डन संगत हो सकता है।

(उत्तर) विधि तो नहीं । परन्तु परमेश्वर के स्थान में किसी अन्य पदार्थ को पूजनीय न मानना और सर्वथा निषेध किया है। क्या अपूर्वविधि नहीं होता? सुनो यह है—

अन्धन्तमः प्र विशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते ।
ततो भूयऽइव ते तमो यऽउ सम्भूत्याꣳरताः ॥१॥

—यजुः० अ० ४० । मं० ९ ॥

न तस्य प्रतिमाऽअस्ति ॥२॥ —यजुः० अ० ३२ । मं० ३ ॥

यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥ १ ॥
यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम् ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥ २ ॥
यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूंषि पश्यन्ति ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥ ३॥
यच्छ्रोत्रेण न शृणोति येन श्रोत्रमिदं श्रुतम् ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥ ४॥
यत्प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्रणीयते ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥ ५॥ केनोपनि० ॥

जो असम्भूति अर्थात् अनुत्पन्न अनादि प्रकृति कारण की ब्रह्म के स्थान में उपासना करते हैं वे अन्धकार अर्थात् अज्ञान और दुःखसागर में डूबते हैं। और सम्भूति जो कारण से उत्पन्न हुए कार्यरूप पृथिवी आदि भूत पाषाण और वृक्षादि अवयव और मनुष्यादि के शरीर की उपासना ब्रह्म के स्थान में करते हैं वे उस अन्धकार से भी अधिक अन्धकार अर्थात् महामूर्ख चिरकाल घोर दुःखरूप नरक में गिरके महाक्लेश भोगते हैं॥ १ ॥

जो सब जगत् में व्यापक है उस निराकार परमात्मा की प्रतिमा परिमाण सादृश्य वा मूर्त्ति नहीं है॥ २ ॥

जो वाणी की 'इदन्ता' अर्थात् यह जल है लीजिये, वैसा विषय नहीं। और जिस के धारण और सत्ता से वाणी की प्रवृत्ति होती है उसी को ब्रह्म जान और उपासना कर। और जो उससे भिन्न है वह उपासनीय नहीं॥ १ ॥

जो मन से 'इयत्ता' करके मन में नहीं आता, जो मन को जानता है उसी ब्रह्म को तू जान और उसी की उपासना कर। जो उस से भिन्न जीव और अन्तःकरण है उस की उपासना ब्रह्म के स्थान में मत कर॥ २ ॥

जो आंख से नहीं दीख पड़ता और जिस से सब आंखें देखती हैं, उसी को तू ब्रह्म जान और उसी की उपासना कर। और जो उस से भिन्न सूर्य, विद्युत् और अग्नि आदि जड़ पदार्थ हैं उन की उपासना मत कर॥ ३ ॥

जो श्रोत्र से नहीं सुना जाता और जिस से श्रोत्र सुनता है उसी को तू ब्रह्म जान और उसी की उपासना कर। और उस से भिन्न शब्दादि की उपासना उस के स्थान में मत कर॥४॥

जो प्राणों से चलायमान नहीं होता जिस से प्राण गमन को प्राप्त होता है उसी ब्रह्म को तू जान और उसी की उपासना कर। जो यह उस से भिन्न वायु है उस की उपासना मत कर॥५॥

इत्यादि बहुत से निषेध हैं। निषेध प्राप्त और अप्राप्त का भी होता है। 'प्राप्त' का जैसे कोई कहीं बैठा हो उस को वहां से उठा देना। 'अप्राप्त' का जैसे हे पुत्र! तू चोरी कभी मत करना, कुवे में मत गिरना। दुष्टों का संग मत करना। विद्याहीन मत रहना। इत्यादि अप्राप्त का भी निषेध होता है। सो मनुष्यों के ज्ञान में अप्राप्त, परमेश्वर के ज्ञान में प्राप्त का निषेध किया है। इसलिये पाषाणादि मूर्त्तिपूजा अत्यन्त निषिद्ध है?

(प्रश्न) मूर्त्तिपूजा में पुण्य नहीं तो पाप तो नहीं है?

(उत्तर) कर्म दो प्रकार के होते हैं—एक विहित—जो कर्त्तव्यता से वेद में सत्यभाषणादि प्रतिपादित हैं। दूसरे निषिद्ध—जो अकर्त्तव्यता से मिथ्याभाषणादि वेद में निषिद्ध हैं। जैसे विहित का अनुष्ठान करना वह धर्म, उस का न करना अधर्म है; वैसे ही निषिद्ध कर्म का करना अधर्म और न करना धर्म है। जब वेदों से निषिद्ध मूर्त्तिपूजादि कर्मों को तुम करते हो तो पापी क्यों नहीं?

(प्रश्न) देखो! वेद अनादि हैं। उस समय मूर्त्तिपूजा का क्या काम था? क्योंकि पहले तो देवता प्रत्यक्ष थे। यह रीति तो पीछे से तन्त्र और पुराणों से चली है। जब मनुष्यों का ज्ञान और सामर्थ्य न्यून हो गया तो परमेश्वर को ध्यान में नहीं ला सके और मूर्त्ति का ध्यान तो कर सकते हैं। इस कारण अज्ञानियों के लिये मूर्त्तिपूजा है। क्योंकि सीढ़ी-सीढ़ी से चढ़े तो भवन पर पहुंच जाय। पहली सीढ़ी छोड़ कर ऊपर जाना चाहै तो नहीं जा सकता, इसलिये मूर्त्ति प्रथम सीढ़ी है। इस को पूजते-पूजते जब ज्ञान होगा और अन्तःकरण पवित्र होगा तब परमात्मा का ध्यान कर सकेगा। जैसे लक्ष्य के मारने वाला प्रथम स्थूल लक्ष्य में तीर, गोली वा गोला आदि मारता-मारता पश्चात् सूक्ष्म में भी निशाना मार सकता है। वैसे स्थूल मूर्त्ति की पूजा करता-करता पुनः सूक्ष्म ब्रह्म को भी प्राप्त होता है। जैसे लड़कियाँ गुड़ियों का खेल तब तक करती हैं कि जब तक सच्चे पति को प्राप्त नहीं होतीं। इत्यादि प्रकार से मूर्त्तिपूजा करना दुष्ट काम नहीं।

(उत्तर) जब वेदविहित धर्म और वेदविरुद्धाचरण में अधर्म है तो पुनः तुम्हारे कहने से भी मूर्त्तिपूजा करना अधर्म ठहरा। जो-जो ग्रन्थ वेद से विरुद्ध हैं उन-उन का प्रमाण करना जानो नास्तिक होना है। सुनो—

नास्तिको वेदनिन्दकः॥ १॥

या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः।
सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ताः स्मृताः॥ २॥

उत्पद्यन्ते च्यवन्ते च यान्यतोऽन्यानि कानिचित्।
तान्यर्वाक्कालिकतया निष्फलान्यनृतानि च॥ ३॥ मनु० अ० १२॥

मनु जी कहते हैं कि जो वेदों की निन्दा अर्थात् अपमान, त्याग, विरुद्धाचरण करता है वह नास्तिक कहाता है॥ १॥

जो ग्रन्थ वेदबाह्य कुत्सित पुरुषों के बनाये संसार को दुःखसागर में डुबोने वाले हैं वे सब निष्फल, असत्य, अन्धकाररूप, इस लोक और परलोक में दुःखदायक हैं॥ २॥

जो इन वेदों से विरुद्ध ग्रन्थ उत्पन्न होते हैं वे आधुनिक होने से शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। उन का मानना निष्फल और झूंठा है॥ ३॥

इसी प्रकार ब्रह्मा से लेकर जैमिनि महर्षिपर्यन्त का मत है कि वेदविरुद्ध को न मानना किन्तु वेदानुकूल ही का आचरण करना धर्म है। क्यों? वेद सत्य अर्थ का प्रतिपादक है इस से विरुद्ध जितने तन्त्र और पुराण हैं वेदविरुद्ध होने से झूंठे हैं कि जो वेद से विरुद्ध चलते हैं उन में कही हुई मूर्त्तिपूजा भी अधर्मरूप है। मनुष्यों का ज्ञान जड़ की पूजा से नहीं बढ़ सकता किन्तु जो कुछ ज्ञान है वह नष्ट हो जाता है। इसलिये ज्ञानियों की सेवा, संग से ज्ञान बढ़ता है; पाषाणदि से नहीं। क्या पाषाणादि मूर्त्तिपूजा से परमेश्वर को ध्यान में कभी ला सकता है? नहीं-नहीं, मूर्त्तिपूजा सीढ़ी नहीं किन्तु एक बड़ी खाई है जिस में गिरकर चकनाचूर हो जाता है। पुनः उस खाई से निकल नहीं सकता किन्तु उसी में मर जाता है। हां! छोटे धार्मिक विद्वानों से लेकर परम विद्वान् योगियों के संग से सद्विद्या और सत्यभाषणादि परमेश्वर की प्राप्ति की सीढ़िया हैं जैसी ऊपर घर में जाने की निःश्रेणी होती है। किन्तु मूर्त्तिपूजा करते-करते ज्ञानी तो कोई न हुआ प्रत्युत सब मूर्त्तिपूजक अज्ञानी रह कर मनुष्यजन्म व्यर्थ खोके बहुत से मर गये और जो अब हैं वा होंगे वे भी मनुष्यजन्म के धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्तिरूप फलों से विमुख होकर निरर्थ नष्ट हो जायेंगे। मूर्त्तिपूजा ब्रह्म की प्राप्ति में स्थूल लक्ष्यवत् नहीं किन्तु धार्मिक विद्वान् और सृष्टिविद्या है। इस को बढ़ाता-बढ़ाता ब्रह्म को भी पाता है। और मूर्त्तिपूजा गुड़ियों के खेलवत् नहीं किन्तु प्रथम अक्षराभ्यास सुशिक्षा का होना गुड़ियों के खेलवत् ब्रह्म की प्राप्ति का साधन है। सुनिये! जब अच्छी शिक्षा और विद्या को प्राप्त होगा तब सच्चे स्वामी परमात्मा को भी प्राप्त हो जायेगा।

(प्रश्न) साकार में मन स्थिर होता और निराकार में स्थिर होना कठिन है इसलिये मूर्त्तिपूजा रहनी चाहिये।

(उत्तर) साकार में मन स्थिर कभी नहीं हो सकता क्योंकि उस को मन झट ग्रहण करके उसी के एक-एक अवयव में घूमता और दूसरे में दौड़ जाता है। और निराकार अनन्त परमात्मा के ग्रहण में यावत्सामर्थ्य मन अत्यन्त दौड़ता है तो भी अन्त नहीं पाता। निरवयव होने से चंचल भी नहीं रहता किन्तु उसी के गुण, कर्म, स्वभाव का विचार करता-करता आनन्द में मग्न होकर स्थिर हो जाता है। और जो साकार में स्थिर होता तो सब जगत् का मन स्थिर हो जाता क्योंकि जगत् में मनुष्य, स्त्री, पुत्र, धन, मित्र आदि साकार में फंसा रहता है परन्तु किसी का मन स्थिर नहीं होता; जब तक निराकार में न लगावे। क्योंकि निरवयव होने से उस में मन स्थिर हो जाता है। इसलिये मूर्त्तिपूजा करना अधर्म है।

दूसरा—उस में क्रोड़ों रुपये मन्दिरों में व्यय करके दरिद्र होते हैं और उस में प्रमाद होता है। **तीसरा**—स्त्री पुरुषों का मन्दिरों में मेला होने से व्यभिचार, लड़ाई बखेड़ा और रोगादि उत्पन्न होते हैं। **चौथा**—उसी को धर्म, अर्थ, काम और मुक्ति का साधन मानके पुरुषार्थ रहित होकर मनुष्यजन्म व्यर्थ गमाता है। **पांचवां**—नाना प्रकार की विरुद्धस्वरूप नाम चरित्रयुक्त मूर्त्तियों के पुजारियों का ऐक्यमत नष्ट होके

विरुद्धमत में चल कर आपस में फूट बढ़ा के देश का नाश करते हैं। **छठा**—उसी के भरोसे में शत्रु का पराजय और अपना विजय मान बैठे रहते हैं। उन का पराजय हो कर राज्य, स्वातन्त्र्य और धन का सुख उनके शत्रुओं के स्वाधीन होता है और आप पराधीन भठियारे के टट्टू और कुम्हार के गदहे के समान शत्रुओं के वश में होकर अनेकविधि दुःख पाते हैं। **सातवां**—जब कोई किसी को कहे कि हम तेरे बैठने के आसन वा नाम पर पत्थर धरें तो जैसे वह उस पर क्रोधित होकर मारता वा गाली प्रदान देता है वैसे ही जो परमेश्वर की उपासना के स्थान हृदय और नाम पर पाषाणादि मूर्त्तियां धरते हैं उन दुष्टबुद्धिवालों का सत्यानाश परमेश्वर क्यों न करे? **आठवां**—भ्रान्त होकर मन्दिर-मन्दिर देशदेशान्तर में घूमते-घूमते दुःख पाते, धर्म, संसार और परमार्थ का काम नष्ट करते, चोर आदि से पीड़ित होते, ठगों से ठगाते रहते हैं।

नववां—दुष्ट पूजारियों को धन देते हैं वे उस धन को वेश्या, परस्त्रीगमन, मद्य, मांसाहार, लड़ाई बखेडों में व्यय करते हैं जिस से दाता का सुख का मूल नष्ट होकर दुःख होता है। **दशवां**—माता पिता आदि माननीयों का अपमान कर पाषाणादि मूर्त्तियों का मान करके कृतघ्न हो जाते हैं। **ग्यारहवां**—उन मूर्त्तियों को कोई तोड़ डालता वा चोर ले जाता है तब हा-हा करके रोते रहते हैं। **बारहवां**—पूजारी परस्त्रियों के संग और पूजारिन परपुरुषों के संग से प्रायः दूषित होकर स्त्री पुरुष के प्रेम के आनन्द को हाथ से खो बैठते हैं। **तेरहवां**—स्वामी सेवक की आज्ञा का पालन यथावत् न होने से परस्पर विरुद्धभाव होकर नष्ट भ्रष्ट हो जाते हैं।

चौदहवां—जड़ का ध्यान करने वाले का आत्मा भी जड़ बुद्धि हो जाता है क्योंकि ध्येय का जड़त्व धर्म अन्तःकरण द्वारा आत्मा में अवश्य आता है। **पन्द्रहवां**—परमेश्वर ने सुगन्धियुक्त पुष्पादि पदार्थ वायु जल के दुर्गन्ध निवारण और आरोग्यता के लिये बनाये हैं। उन को पुजारी जी तोड़ताड़ कर न जाने उन पुष्पों की कितने दिन तक सुगन्धि आकाश में चढ़ कर वायु जल की शुद्धि करता और पूर्ण सुगन्धि के समय तक उस का सुगन्ध होता है; उस का नाश मध्य में ही कर देते हैं। पुष्पादि कीच के साथ मिल सड़ कर उलटा दुर्गन्ध उत्पन्न करते हैं। क्या परमात्मा ने पत्थर पर चढ़ाने के लिये पुष्पादि सुगन्धियुक्त पदार्थ रचे हैं। **सोलहवां**—पत्थर पर चढ़े हुए पुष्प, चन्दन और अक्षत आदि सब का जल और मृत्तिका के संयोग होने से मोरी वा कुण्ड में आकर सड़ के इतना उस से दुर्गन्ध आकाश में चढ़ता है कि जितना मनुष्य के मल का। और सहस्रों जीव उस में पड़ते उसी में मरते और सड़ते हैं। ऐसे-ऐसे अनेक मूर्त्तिपूजा के करने में दोष आते हैं। इसलिये सर्वथा पाषाणादि मूर्त्तिपूजा सज्जन लोगों को त्यक्तव्य है। और जिन्होंने पाषाणमय मूर्त्ति की पूजा की है, करते हैं और करेंगे। वे पूर्वोक्त दोषों से न बचे; न बचते हैं, और न बचेंगे।

(प्रश्न) किसी प्रकार की मूर्त्तिपूजा करनी करानी नहीं और जो अपने आर्य्यावर्त्त में पञ्चदेवपूजा शब्द प्राचीन परम्परा से चला आता है उस का यही पञ्चायतनपूजा जो कि शिव, विष्णु, अम्बिका, गणेश और सूर्य्य की मूर्त्ति बनाकर पूजते हैं; यह पञ्चायतनपूजा है वा नहीं?

(उत्तर) किसी प्रकार की मूर्त्तिपूजा न करना किन्तु 'मूर्त्तिमान्' जो नीचे कहेंगे उन की पूजा अर्थात् सत्कार करना चाहिये। वह पञ्चदेवपूजा, पञ्चायतनपूजा

शब्द बहुत अच्छा अर्थ वाला है परन्तु विद्याहीन मूढों ने उसके उत्तम अर्थ को छोड़ कर निकृष्ट अर्थ पकड़ लिया। जो आजकल शिवादि पांचों की मूर्त्तियां बनाकर पूजते हैं उन का खण्डन तो अभी कर चुके हैं। पर जो सच्ची पञ्चायतन वेदोक्त और वेदानुकूलोक्त देवपूजा और मूर्त्तिपूजा है वह सुनो—

मा नो॑ वधीः पि॒तरं॒ मोत मा॒तर॑म् ॥१॥ यजु०॥

आ॒चा॒र्य॒ऽउप॒नय॑मानो ब्रह्मचा॒रिण॑मिच्छते ॥२॥

अति॑थिर्गृ॒हानु॒पग॒च्छे॑त् ॥३॥ अथर्व०॥

अर्च॑त॒ प्रार्च॑त॒ प्रिय॑मे॒धासो॒ अर्च॑त ॥४॥ ऋग्वेदे०॥

त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि ॥ ५ ॥ —तैत्तिरीयोप० ॥

कतम एको देव इति स ब्रह्म त्यदित्याचक्षते ॥ ६ ॥

—शतपथ प्रपाठ० ५। ब्राह्मण ७। कण्डिका १० ॥

मातृदेवो भव पितृदेवो भव आचार्यदेवो भव अतिथिदेवो भव ॥ ७ ॥

—तैत्तिरीयोप० ॥

पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा ।
पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः ॥ ८ ॥
पूज्यो देववत्पतिः ॥ ९ ॥ मनुस्मृतौ ॥

प्रथम माता मूर्त्तिमती पूजनीय देवता, अर्थात् सन्तानों को तन, मन, धन से सेवा करके माता को प्रसन्न रखना, हिंसा अर्थात् ताड़ना कभी न करना। दूसरा पिता सत्कर्त्तव्य देव। उस की भी माता के समान सेवा करनी ॥ १ ॥

तीसरा आचार्य जो विद्या का देने वाला है उस की तन, मन, धन से सेवा करनी ॥ २ ॥

चौथा अतिथि जो विद्वान्, धार्मिक, निष्कपटी, सब की उन्नति चाहने वाला जगत् में भ्रमण करता हुआ, सत्य उपदेश से सब को सुखी करता है उस की सेवा करें ॥ ३ ॥

पांचवां स्त्री के लिये पति और पुरुष के लिये स्वपत्नी पूजनीय है ॥ ८ ॥

ये पांच मूर्त्तिमान् देव जिन के संग से मनुष्यदेह की उत्पत्ति, पालन, सत्यशिक्षा, विद्या और सत्योपदेश की प्राप्ति होती हैं ये ही परमेश्वर को प्राप्ति होने की सीढ़ियां हैं। इन की सेवा न करके जो पाषाणादि मूर्त्ति पूजते हैं वे अतीव **पामर, नरकगामी** तथा **वेदविरोधी** हैं।

(प्रश्न) माता पिता आदि की सेवा करें और मूर्त्तिपूजा भी करें तब तो कोई दोष नहीं?

(उत्तर) पाषाणादि मूर्त्तिपूजा तो सर्वथा छोड़ने और मातादि मूर्त्तिमानों की सेवा करने ही में कल्याण है। बड़े अनर्थ की बात है कि साक्षात् माता आदि प्रत्यक्ष सुखदायक देवों को छोड़ के अदेव पाषाणादि में शिर मारना स्वीकार किया। इसको लोगों ने इसीलिये स्वीकार किया है कि जो माता पितादि के सामने नैवेद्य वा भेंट पूजा धरेंगे तो वे स्वयं खा लेंगे और भेंट पूजा ले लेंगे तो हमारे मुख वा हाथ में कुछ न पड़ेगा। इससे पाषाणादि की मूर्त्ति बना, उस के आगे नैवेद्य धर, घण्टानाद टं टं पूं पूं और शङ्ख बजा, कोलाहल कर, अंगूठा दिखला अर्थात् **'त्वमङ्गुष्ठं गृहाण**

भोजनं पदार्थं वाऽहं ग्रहिष्यामि' जैसे कोई किसी को छले वा चिढ़ावे कि तू घण्टा ले और अंगूठा दिखलावे उस के आगे से सब पदार्थ ले आप भोगे, वैसी ही लीला इन पूजारियों अर्थात् पूजा नाम सत्कर्म के शत्रुओं की है। ये लोग चटक मटक, चलक झलक मूर्त्तियों को बना ठना, आप ठगों के तुल्य बन ठन के विचारे निर्बुद्धि अनाथों का माल मारके मौज करते हैं। जो कोई धार्मिक राजा होता तो इन पाषाणप्रियों को पत्थर तोड़ने, बनाने और घर रचने आदि कामों में लगाके खाने पीने को देता; निर्वाह कराता।

(प्रश्न) जैसे स्त्री की पाषाणादि मूर्ति देखने से कामोत्पत्ति होती है वैसी वीतराग शान्त की मूर्त्ति देखने से वैराग्य और शान्ति की प्राप्ति क्यों न होगी?

(उत्तर) नहीं हो सकती। क्योंकि उस मूर्त्ति के जड़त्व धर्म आत्मा में आने से विचारशक्ति घट जाती है। विवेक के विना न वैराग्य और वैराग्य के विना विज्ञान, विज्ञान के विना शान्ति नहीं होती। और जो कुछ होता है सो उनके संग, उपदेश और उनके इतिहासादि के देखने से होता है क्योंकि जिस का गुण वा दोष न जानके उस की मूर्त्तिमात्र देखने से प्रीति नहीं होती। प्रीति होने का कारण गुणज्ञान है। ऐसे मूर्त्तिपूजा आदि बुरे कारणों ही से आर्य्यावर्त्त में निकम्मे पुजारी भिक्षुक आलसी पुरुषार्थ रहित क्रोड़ों मनुष्य हुए हैं। सब संसार में मूढ़ता उन्हीं ने फैलाई है। झूठ छल भी बहुत सा फैला है।

(प्रश्न) देखो! काशी में 'औरंगजेब' बादशाह को 'लाटभैरव' आदि ने बड़े-बड़े चमत्कार दिखलाये थे। जब मुसलमान उन को तोड़ने गये और उन्होंने जब उन पर तोप गोला आदि मारे तब बड़े-बड़े भमरे निकल कर सब फौज को व्याकुल कर भगा दिया।

(उत्तर) यह पाषाण का चमत्कार नहीं किन्तु वहां भमरे के छत्ते लग रहे होंगे। उन का स्वभाव ही क्रूर है। जब कोई उन को छेड़े तो वे काटने को दौड़ते हैं। और जो दूध की धारा का चमत्कार होता था वह पुजारी जी की लीला थी।

(प्रश्न) देखो! महादेव म्लेच्छ को दर्शन न देने के लिये कूप में और वेणीमाधव एक ब्राह्मण के घर में जा छिपे। क्या यह भी चमत्कार नहीं है?

(उत्तर) भला जिस के कोटपाल, कालभैरव, लाटभैरव आदि भूत प्रेत और गरुड़ आदि गणों ने मुसलमानों को लड़के क्यों न हटाये? जब महादेव और विष्णु की पुराणों में कथा है कि अनेक त्रिपुरासुर आदि बड़े भयङ्कर दुष्टों को भस्म कर दिया तो मुसलमानों को भस्म क्यों न किया? इस से यह सिद्ध होता है कि वे बिचारे पाषाण क्या लड़ते लड़ाते? जब मुसलमान मन्दिर और मूर्त्तियों को तोड़ते-फोड़ते हुए काशी के पास आए तब पूजारियों ने उस पाषाण के लिङ्ग को कूप में डाल और वेणीमाधव को ब्राह्मण के घर में छिपा दिया। जब काशी में कालभैरव के डर के मारे यमदूत नहीं जाते और प्रलय समय में भी काशी का नाश होने नहीं देते तो म्लेच्छों के दूत क्यों न डराये? और अपने राज के मन्दिरों का क्यों नाश होने दिया? यह सब पोपमाया है।

(प्रश्न) गया में श्राद्ध करने से पितरों का पाप छूट कर वहां के श्राद्ध के पुण्य प्रभाव से पितर स्वर्ग में जाते और पितर अपना हाथ निकाल कर पिण्ड लेते हैं। क्या यह भी बात झूठी है?

(उत्तर) सर्वथा झूठ। जो वहां पिण्ड देने का वही प्रभाव है तो जिन पण्डों

को पितरों के सुख के लिए लाखों रुपये देते हैं उन का व्यय गयावाले वेश्यागमनादि पाप में करते हैं वह पाप क्यों नहीं छूटता? और हाथ निकलता आज कल कहीं नहीं दीखता; विना पण्डों के हाथों के। यह कभी किसी धूर्त्त ने पृथिवी में गुफा खोद उस में एक मनुष्य बैठा दिया होगा। पश्चात् उस के मुख पर कुछ बिछा, पिण्ड दिया होगा और उस कपटी ने उठा लिया होगा। किसी **आंख के अन्धे गांठ के पूरे** को इस प्रकार ठगा हो तो आश्चर्य नहीं। वैसे ही वैजनाथ को रावण लाया था; यह भी मिथ्या बात है।

(प्रश्न) देखो! कलकत्ते की काली और कामाक्षा आदि देवी को लाखों मनुष्य मानते हैं। क्या यह चमत्कार नहीं है?

(उत्तर) कुछ भी नहीं। वे अन्धे लोग भेड़ के तुल्य एक के पीछे दूसरे चलते हैं। कूप खाड़े में गिरते हैं; हट नहीं सकते। वैसे ही एक मूर्ख के पीछे दूसरे चलकर मूर्त्तिपूजा रूप गढ़े में फंसकर दुःख पाते हैं।

(प्रश्न) भला यह तो जाने दो परन्तु जगन्नाथ जी में प्रत्यक्ष चमत्कार है। एक कलेवर बदलने के समय चन्दन का लकड़ा समुद्र में से स्वयमेव आता है। चूल्हे पर ऊपर-ऊपर सात हण्डे धरने से ऊपर-ऊपर के पहले-पहले पकते हैं। और जो कोई वहां जगन्नाथ की परसादी न खावे तो कुष्ठी हो जाता है और रथ आप से आप चलता पापी को दर्शन नहीं होता है। इन्द्रदमन के राज्य में देवताओं ने मन्दिर बनाया है। कलेवर बदलने के समय एक राजा, एक पण्डा, एक बढ़ई मर जाने आदि चमत्कारों को तुम झूठ न कर सकोगे?

(उत्तर) जिस ने बारह वर्ष पर्यन्त जगन्नाथ की पूजा की थी वह विरक्त हो कर मथुरा में आया था; मुझ से मिला था। मैंने इन बातों का उत्तर पूछा था। उस ने ये सब बातें झूठ बतलाईं। किन्तु विचार से निश्चय यह है—जब कलेवर बदलने का समय आता है तब नौका में चन्दन की लकड़ी ले समुद्र में डालते हैं वह समुद्र की लहरियों से किनारे लग जाती है। उस को ले सुतार लोग मूर्त्तियां बनाते हैं। जब रसोई बनती है तब कपाट बन्द करके रसोइयों के विना अन्य किसी को न जाने, न देखने देते हैं। भूमि पर चारों ओर छः और बीच में एक चक्राकार चूल्हे बनाते हैं। उन हण्डों के नीचे घी, मट्टी और राख लगा छः चूल्हों पर चावल पका, उनके तले मांज कर, उस बीच के हण्डे में उसी समय चावल डाल छः चूल्हों के मुख लोहे के तवों से बांध कर, दर्शन करने वालों को जो कि धनाढ्य हों, बुला के दिखलाते हैं। ऊपर-ऊपर के हण्डों से चावल निकाल, पके हुए चावलों को दिखला, नीचे के कच्चे चावल निकाल दिखा के उन से कहते हैं कि कुछ हण्डे के लिये रख दो। **आंख के अन्धे गांठ के पूरे** रुपया अशर्फी धरते और कोई-कोई मासिक भी बांध देते हैं।

शूद्र नीच लोग मन्दिर में नैवेद्य लाते हैं। जब नैवेद्य हो चुकता है तब वे शूद्र नीच लोग झूठा कर देते हैं। पश्चात् जो कोई रुपया देकर हण्डा लेवे उस के घर पहुंचाते और दीन गृहस्थ और साधु सन्तों को लेके शूद्र और अन्त्यज पर्य्यन्त एक पंक्ति में बैठ झूंठा एक दूसरे का भोजन करते हैं। जब वह पंक्ति उठती है तब उन्हीं पत्तलों पर दूसरे को बैठाते जाते हैं। महा अनाचार है। और बहुतेरे मनुष्य वहाँ जाकर, उन का झूंठा न खाके, अपने हाथ बना खाकर चले आते हैं, कुछ भी कुष्ठादि रोग नहीं होते। और उस जगन्नाथपुरी में भी बहुत से परसादी नहीं

खाते। उन को भी कुष्ठादि रोग नहीं होते। और उस जगन्नाथपुरी में भी बहुत से कुष्ठी हैं, नित्यप्रति झूंठा खाने से भी रोग नहीं छूटता।

और यह जगन्नाथ में वाममार्गियों ने भैरवीचक्र बनाया है क्योंकि सुभद्रा, श्री कृष्ण और बलदेव की बहिन लगती है। उसी को दोनों भाइयों के बीच में स्त्री और माता के स्थान बैठाई है। जो भैरवीचक्र न होता तो यह बात कभी न होती।

और रथ के पहिये के साथ कला बनाई है। जब उन को सूधी घुमाते हैं घूमती है, तब रथ चलता है। जब मेले के बीच में पहुंचता है तभी उस की कील को उल्टी घुमा देने से रथ खड़ा रह जाता है। पुजारी लोग पुकारते हैं दान देओ, पुण्य करो, जिस से जगन्नाथ प्रसन्न होकर अपना रथ चलावें, अपना धर्म रहै। जब तक भेंट आती जाती है तब तक ऐसे ही पुकारते जाते हैं। जब आ चुकती है तब एक व्रजवासी अच्छे कपड़े दुसाला ओढ़ कर आगे खड़ा रहके हाथ जोड़ स्तुति करता है कि 'हे जगन्नाथ स्वामिन्! आप कृपा करके रथ को चलाइये, हमारा धर्म रक्खो' इत्यादि बोल के साष्टांग दण्डवत् प्रणाम कर रथ पर चढ़ता है। उसी समय कील को सूधा घुमा देते हैं और जय-जय शब्द बोल, सहस्रों मनुष्य रस्सा खीचते हैं, रथ चलता है।

जब बहुत से लोग दर्शन को जाते हैं तब इतना बड़ा मन्दिर है कि जिस में दिन में भी अन्धेरा रहता है और दीपक जलाना पड़ता है। उन मूर्त्तियों के आगे पड़दे खैंच कर लगाने के पर्दे दोनों ओर रहते हैं। पण्डे पुजारी भीतर खड़े रहते हैं। जब एक ओर वाले ने पर्दे को खींचा, झट मूर्त्ति आड़ में आ जाती है। तब सब पण्डे पुजारी पुकारते हैं—तुम भेंट धरो, तुम्हारे पाप छूट जायेंगे, तब दर्शन होगा। शीघ्र करो। वे बिचारे भोले मनुष्य धूर्त्तों के हाथ लूटे जाते हैं। और झट पर्दा दूसरा खैंच लेते हैं तभी दर्शन होता है। तब जय शब्द बोल के प्रसन्न होकर धक्के खाके तिरस्कृत हो चले आते हैं।

इन्द्रदमन वही है कि जिस के कुल के लोग अब तक कलकत्ते में हैं। वह धनाढ्य राजा और देवी का उपासक था। उसने लाखों रुपये लगा कर मन्दिर बनवाया था। इसलिये कि आर्यावर्त्त देश के भोजन का बखेड़ा इस रीति से छुड़ावें। परन्तु वे मूर्ख कब छोड़ते हैं? देव मानो तो उन्हीं कारीगरों को मानो कि जिन शिल्पियों ने मन्दिर बनाया।

राजा, पण्डा और बढ़ई उस समय नहीं मरते परन्तु वे तीनों वहां प्रधान रहते हैं। छोटों को दुःख देते होंगे। उन्होंने सम्मति करके (उसी समय अर्थात् कलेवर बदलने के समय वे तीनों उपस्थित रहते हैं; मूर्त्ति का हृदय पोला रक्खा है। उस में सोने के सम्पुट में एक सालगराम रखते हैं कि जिस को प्रतिदिन धोकर चरणामृत बनाते हैं। उस पर रात्री की शयन आर्त्ती में उन लोगों ने विष का तेजाब लपेट दिया होगा। उस को धोके उन्हीं तीनों को पिलाया होगा कि जिस से वे कभी मर गये होंगे। मरे तो इस प्रकार और भोजनभट्टों ने प्रसिद्ध किया होगा कि जगन्नाथ जी अपने शरीर बदलने के समय तीनों भक्तों को भी साथ ले गये।

ऐसी झूंठी बातें पराये धन ठगने के लिये बहुत सी हुआ करती हैं।

(प्रश्न) जो रामेश्वर में गंगोत्तरी के जल चढ़ाते समय लिङ्ग बढ़ जाता है क्या यह भी बात झूंठी है?

(उत्तर) झूंठी! क्योंकि उस मन्दिर में भी दिन में अन्धेरा रहता है। दीपक

रात दिन जला करते हैं। जब जल की धारा छोड़ते हैं तब उस जल में बिजुली के समान दीपक का प्रतिबिम्ब चलकता है और कुछ भी नहीं। न पाषाण घटे, न बढ़े, जितना का उतना रहता है। ऐसी लीला करके बिचारे निर्बुद्धियों को ठगते हैं।

(प्रश्न) रामेश्वर को रामचन्द्र ने स्थापन किया है। जो मूर्त्तिपूजा वेदविरुद्ध होती तो रामचन्द्र मूर्त्तिस्थापन क्यों करते और वाल्मीकि जी रामायण में क्यों लिखते?

(उत्तर) रामचन्द्र के समय में उस लिङ्ग वा मन्दिर का नाम चिह्न भी न था किन्तु यह ठीक है कि दक्षिण देशस्थ रामनामक राजा ने मन्दिर बनवा, लिङ्ग का नाम रामेश्वर धर दिया है। जब रामचन्द्र सीता जी को ले हनुमान् आदि के साथ लङ्का से चल आकाश मार्ग में विमान पर बैठ अयोध्या को आते थे तब सीता जी से कहा है कि—

अत्र पूर्वं महादेवः प्रसादमकरोद्विभुः।
सेतुबन्ध इति विख्यातम्॥ —वाल्मीकि रा०। लङ्का कां०॥

हे सीते! तेरे वियोग से हम व्याकुल होकर घूमते थे और इसी स्थान में चातुर्मास किया था और परमेश्वर की उपासना ध्यान भी करते थे। वही जो सर्वत्र विभु (व्यापक) देवों का देव महादेव परमात्मा है उस की कृपा से हम को सब सामग्री यहां प्राप्त हुई। और देख! यह सेतु हम ने बांध कर लङ्का में आके, उस रावण को मार, तुझ को ले आये। इसके सिवाय वहां वाल्मीकि ने अन्य कुछ भी नहीं लिखा।

(प्रश्न) 'रंग है कालियाकन्त को जिसने हुक्का पिलाया सन्त को'। दक्षिण में एक कालियाकन्त की मूर्त्ति है। वह अब तक हुक्का पिया करती है। जो मूर्त्ति झूंठी हो तो यह चमत्कार भी झूंठ हो जाय।

(उत्तर) झूंठी-झूंठी। यह सब पोपलीला है। क्योंकि वह मूर्त्ति का मुख पोला होगा। उसका छिद्र पृष्ठ में निकाल के भित्ती के पार दूसरे मकान में नल लगा होगा। जब पुजारी हुक्का भरवा पेंचवां लगा, मुख में नली जमा के,पड़दे डाल निकल आता होगा तभी पीछे वाला आदमी मुख से खींचता होगा तो इधर हुक्का गड़-गड़ बोलता होगा। दूसरा छिद्र नाक और मुख के साथ लगा होगा। जब पीछे फूंकें मार देता होगा तब नाक और मुख के छिद्रों से धुआं निकलता होगा उस समय बहुत से मूढों को धनादि पदार्थों से लूट कर धनरहित करते होंगे।

(प्रश्न) देखो! डाकोर जी की मूर्त्ति द्वारिका से भगत के साथ चली आई। एक सवा रत्ती सोने में कई मन की मूर्त्ति तुल गई। क्या यह भी चमत्कार नहीं?

(उत्तर) नहीं! वह भक्त मूर्त्ति को चोर ले आया होगा और सवा रत्ती के बराबर मूर्त्ति का तुलना किसी भंगड़ आदमी ने गप्प मारा होगा।

(प्रश्न) देखो! सोमनाथ जी पृथिवी के ऊपर रहता था और बड़ा चमत्कार था क्या यह भी मिथ्या बात है?

(उत्तर) हां मिथ्या है। सुनो! ऊपर नीचे चुम्बक पाषाण लगा रक्खे थे। उसके आकर्षण से वह मूर्त्ति अधर खड़ी थी। जब 'महमूद गजनवी' आकर लड़ा तब यह चमत्कार हुआ कि उस का मन्दिर तोड़ा गया और पुजारी भक्तों की दुर्दशा हो गई और लाखों फौज दश सहस्र फौज से भाग गई। जो पोप पुजारी पूजा, पुरश्चरण, स्तुति, प्रार्थना करते थे कि 'हे महादेव! इस म्लेच्छ को तू मार डाल, हमारी रक्षा कर, और वे अपने चेले राजाओं को समझाते थे 'कि आप निश्चिन्त रहिये। महादेव

जी, भैरव अथवा वीरभद्र को भेज देंगे। वे सब म्लेच्छों को मार डालेंगे वा अन्धा कर देंगे। अभी हमारा देवता प्रसिद्ध होता है। हनुमान्, दुर्गा और भैरव ने स्वप्न दिया है कि हम सब काम कर देंगे।' वे विचारे भोले राजा और क्षत्रिय पोपों के बहकाने से विश्वास में रहे। कितने ही ज्योतिषी पोपों ने कहा कि अभी तुम्हारी चढ़ाई का मुहूर्त्त नहीं है। एक ने आठवां चन्द्रमा बतलाया, दूसरे ने योगिनी सामने दिखलाई। इत्यादि बहकावट में रहे।

जब म्लेच्छों की फौज ने आकर घेर लिया तब दुर्दशा से भागे, कितने ही पोप पुजारी और उन के चेले पकड़े गये। पुजारियों ने यह भी हाथ जोड़ कर कहा कि तीन क्रोड़ रुपया ले लो मन्दिर और मूर्त्ति मत तोड़ो। मुसलमानों ने कहा कि हम 'बुत्परस्त' नहीं किन्तु 'बुतशिकन् अर्थात् मूर्त्तिपूजक नहीं किन्तु मूर्त्तिभञ्जक हैं। जा के झट मन्दिर तोड़ दिया। जब ऊपर की छत टूटी तब चुम्बक पाषाण पृथक् होने से मूर्त्ति गिर पड़ी। जब मूर्त्ति तोड़ी तब सुनते हैं कि **अठारह करोड़ के रत्न निकले**। जब पुजारी और पोपों पर कोड़ा पड़े तो रोने लगे। कहा कि कोष बतलाओ। मार के मारे झट बतला दिया। तब सब कोष लूट मार कूट कर पोप और उन के चेलों को 'गुलाम' बिगारी बना, पिसना पिसवाया, घास खुदवाया, मल मूत्रादि उठवाया और चना खाने को दिये। हाय! क्यों पत्थर की पूजा कर सत्यानाश को प्राप्त हुए? क्यों परमेश्वर की भक्ति न की? जो म्लेच्छों के दांत तोड़ डालते और अपना विजय करते। देखो! जितनी मूर्त्तियाँ हैं उतनी शूरवीरों की पूजा करते तो भी कितनी रक्षा होती? पुजारियों ने इन पाषाणों की इतनी भक्ति की किन्तु मूर्त्ति एक भी उन के शिर पर उड़ के न लगी। जो किसी एक शूरवीर पुरुष की मूर्त्ति के सदृश सेवा करते तो वह अपने सेवकों को यथाशक्ति बचाता और उन शत्रुओं को मारता।

(प्रश्न) द्वारिका जी के रणछोड़ जी जिस ने 'नर्सीमहिता' के पास हुण्डी भेज दी और उस का ऋण चुका दिया इत्यादि बात भी क्या झूठ है?

(उत्तर) किसी साहूकार ने रुपये दे दिये होंगे। किसी ने झूठा नाम उड़ा दिया होगा कि श्री कृष्ण ने भेजे। जब संवत् १९१४ के वर्ष में तोपों के मारे मन्दिर मूर्त्तियां अंगरेजों ने उड़ा दी थीं तब मूर्त्ति कहां गई थीं? प्रत्युत बाघेर लोगों ने जितनी वीरता की और लड़े शत्रुओं को मारा परन्तु मूर्त्ति एक मक्खी की टांग भी न तोड़ सकी। जो श्रीकृष्ण के सदृश कोई होता तो इनके धुर्रे उड़ा देता और ये भागते फिरते। भला यह तो कहो कि जिस का रक्षक मार खाय उस के शरणागत क्यों न पीटे जायें?

(प्रश्न) ज्वालामुखी तो प्रत्यक्ष देवी है सब को खा जाती है। और प्रसाद देवें तो आधा खा जाती और आधा छोड़ देती है। मुसलमान बादशाहों ने उस पर जल की नहर छुड़वाई और लोहे के तवे जड़वाये थे तो भी ज्वाला न बुझी और न रुकी। वैसे हिंगलाज भी आधी रात को सवारी कर पहाड़ पर दिखाई देती, पहाड़ को गर्जना कराती है। चन्द्रकूप बोलता और योनियन्त्र से निकलने से पुनर्जन्म नहीं होता, ठूमरा बांधने से पूरा महापुरुष कहाता। जब तक हिंगलाज न हो आवे तब तक आधा महापुरुष बजता है। इत्यादि सब बातें क्या मानने योग्य नहीं?

(उत्तर) नहीं। क्योंकि वह ज्वालामुखी पहाड़ से आगी निकलती है। उस में पुजारी लोगों की विचित्र लीला है। जैसे बघार के घी के चमचे में ज्वाला आ जाती अलग करने से वा फूंक मारने से बुझ जाती और थोड़ा से घी को खा जाती,

शेष छोड़ जाती है। उसी के समान वहां भी है। जैसे चूल्हे की ज्वाला में जो डाला जाय सब भस्म हो जाता, जंगल वा घर में लग जाने से सब को खा जाती है, इस से वहां क्या विशेष है? विना एक मन्दिर, कुण्ड और इधर उधर नल रचना के हिंगलाज में न कोई सवारी होती और जो कुछ होता है वह सब पोप पुजारियों की लीला से दूसरा कुछ भी नहीं। एक जल और दलदल का कुण्ड बना रखा है, जिसके नीचे से बुद्‌बुदे उठते हैं। उस को सफल यात्रा होना मूढ़ मानते हैं। योनि का यन्त्र उन लोगों ने धन हरने के लिये बनवा रखा है और ठुमरे भी उसी प्रकार पोपलीला के हैं। उस से महापुरुष हो तो एक पशु पर ठुमरे का बोझ लाद दें तो क्या महापुरुष हो जायगा? महापुरुष तो बड़े उत्तम धर्मयुक्त पुरुषार्थ से होता है।

(प्रश्न) अमृतसर का तालाब अमृतरूप, एक मुरेठी का फल आधा मीठा और एक भित्ती नमती और गिरती नहीं, रेवालसर में बेड़े तरते, अमरनाथ में आप से आप लिङ्ग बन जाते, हिमालय से कबूतर के जोड़े आ के सब को दर्शन देकर चले जाते हैं, क्या यह भी मानने योग्य नहीं?

(उत्तर) नहीं। उस तालाब का नाममात्र अमृतसर है। जब कभी जंगल होगा तब उस का जल अच्छा होगा। इस से उस का नाम अमृतसर धरा होगा। जो अमृत होता तो पुराणियों के मानने के तुल्य कोई क्यों मरता। भित्ती की कुछ बनावट ऐसी होगी जिससे नमती होगी और गिरती न होगी। रीठे कलम के पैबन्दी होंगे अथवा गपोड़ा होगा। रेवालसर में बेड़ा तरने में कुछ कारीगरी होगी। अमरनाथ में बर्फ के पहाड़ बनते हैं तो जल जम के छोटे लिङ्ग का बनना कौन आश्चर्य है? और कबूतर के जोड़े पालित होंगे, पहाड़ की आड़ में से मनुष्य छोड़ते होंगे, दिखला कर टका हरते होंगे।

(प्रश्न) हरद्वार स्वर्ग का द्वार हर की पैड़ी में स्नान करे तो पाप छूट जाते हैं और तपोवन में रहने से तपस्वी होता। देवप्रयाग, गंगोत्तरी में गोमुख, उत्तरकाशी में गुप्तकाशी, त्रियुगी नारायण के दर्शन होते हैं। केदार और बदरीनारायण की पूजा छः महीने तक मनुष्य और छः महीने तक देवता करते हैं। महादेव का मुख नैपाल में पशुपति, चूतड़ केदार और तुंगनाथ में, जानु और पग अमरनाथ में। इन के दर्शन, स्पर्शन, स्नान करने से मुक्ति हो जाती है। वहां केदार और बदरी से स्वर्ग जाना चाहै तो जा सकता है। इत्यादि बातें कैसी हैं?

(उत्तर) हरद्वार उत्तर पहाड़ों में जाने का एक मार्ग का आरम्भ है। हर की पैड़ी एक स्नान के लिये कुण्ड की सीढ़ियों को बनाया है। सच पूछो तो 'हाड़पैड़ी' है क्योंकि देशदेशान्तर के मृतकों के हाड़ उस में पड़ा करते हैं। पाप कभी कहीं नहीं छूट सकते, विना भोगे अथवा नहीं कटते। 'तपोवन' जब होगा तब होगा। अब तो 'भिक्षुकवन' है। तपोवन में जाने, रहने से तप नहीं होता किन्तु तप तो करने से होता है। क्योंकि वहाँ बहुत से दुकानदार झूठ बोलने वाले भी रहते हैं।

'हिमवतः प्रभवति गङ्गा' पहाड़ के ऊपर से जल गिरता है। गोमुख का आकार टका लेने वालों ने बनाया होगा और वही पहाड़ पोप का स्वर्ग है। वहाँ उत्तरकाशी आदि स्नान ध्यानियों के लिये अच्छा है परन्तु दुकानदारों के लिये वहां भी दुकानदारी है। देवप्रयाग पुराणों के गपोड़ों की लीला है अर्थात् जहां अलखनन्दा और गंगा मिली है इसलिये वहां देवता वसते हैं; ऐसे गपोड़े न मारें तो वहां कौन जाय? और टका कौन देवे? गुप्तकाशी तो नहीं है वह प्रसिद्ध काशी है। तीन युग

की धूनी तो नहीं दीखती परन्तु पोपों की दश-बीस पीढ़ी की होगी। जैसी खाखियों की धूनी और पार्सियों की अग्यारी सदैव जलती रहती है। तप्तकुण्ड भी पहाड़ों के भीतर ऊष्मा गर्मी होती है उसमें तप कर जल आता है। उसके पास दूसरे कुण्ड में ऊपर का जल वा जहां गर्मी नहीं वहां का आता है; इस से ठण्डा है। केदार का स्थान वह भूमि बहुत अच्छी है। परन्तु वहां भी एक जमे हुए पत्थर पर पुजारी वा उनके चेलों ने मन्दिर बना रखा है। वहां महन्त पुजारी पण्डे **आंख के अन्धे गांठ के पूरों** से माल लेकर विषयानन्द करते हैं। वैसे ही बदरीनारायण में ठग विद्यावाले बहुत से बैठे हैं। 'रावल जी' वहां के मुख्य हैं। एक स्त्री छोड़ अनेक स्त्री रख बैठे हैं। पशुपति एक मन्दिर और पञ्चमुखी मूर्त्ति का नाम धर रखा है। जब कोई न पूछे तभी ऐसी लीला बलवती होती है। परन्तु जैसे तीर्थ के लोग धूर्त धनहरे होते हैं वैसे पहाड़ी लोग नहीं होते। वहां की भूमि बड़ी रमणीय और पवित्र है।

(प्रश्न) विन्ध्याचल में विन्ध्येश्वरी काली अष्टभुजा प्रत्यक्ष सत्य है। विन्ध्येश्वरी तीन समय में तीन रूप बदलती है और उसके बाड़े में मक्खी एक भी नहीं होती। प्रयाग तीर्थराज वहां शिर मुण्डाये सिद्धि, गंगा यमुना के संगम में स्नान करने से इच्छासिद्धि होती है। वैसे ही अयोध्या कई बार उड़ कर सब बस्ती सहित स्वर्ग में चली गई। मथुरा सब तीर्थों से अधिक; वृन्दावन लीलास्थान और गोवर्द्धन व्रजयात्रा बड़े भाग्य से होती है। सूर्यग्रहण में कुरुक्षेत्र में लाखों मनुष्यों का मेला होता है। क्या ये सब बातें मिथ्या हैं?

(उत्तर) प्रत्यक्ष तो आंखों से तीनों मूर्त्तियां दीखती हैं कि पाषाण की मूर्त्तियां हैं। और तीन काल में तीन प्रकार के रूप होने का कारण पुजारी लोगों के वस्त्र आदि आभूषण पहिराने की चतुराई है और मक्खियां सहस्रों लाखों होती हैं; मैंने अपनी आंखों से देखा है। प्रयाग में कोई नापित श्लोक बनानेहारा अथवा पोप जी को कुछ धन देके मुण्डन कराने का माहात्म्य बनाया वा बनवाया होगा। प्रयाग में स्नान करके स्वर्ग को जाता तो लौटकर घर में आता कोई भी नहीं दीखता किन्तु घर को सब आते हुए दीखते हैं। अथवा जो कोई वहां डूब मरता और उस का जीव भी आकाश में वायु के साथ घूम कर जन्म लेता होगा। तीर्थराज भी नाम टका लेने वालों ने धरा है। जड़ में राजा प्रजाभाव कभी नहीं हो सकता। यह बड़ी असम्भव बात है कि अयोध्या नगरी वस्ती, कुत्ते, गधे, भंगी, चमार, जाजरू सहित तीन बार स्वर्ग में चली गई। स्वर्ग में तो नहीं गई, वहीं की वहीं है परन्तु पोप जी के मुख गपोड़ों में अयोध्या स्वर्ग को उड़ गई। यह गपोड़ा शब्दरूप उड़ता फिरता है। ऐसी ही नैमिषारण्य आदि की भी पोपलीला जाननी।

'मथुरा तीन लोक से निराली' तो नहीं परन्तु उसमें तीन जन्तु बड़े लीला-धारी हैं कि जिन के मारे जल, स्थल और अन्तरिक्ष में किसी को सुख मिलना कठिन है। एक चौबे जो कोई स्नान करने जाय अपना कर लेने को खड़े रह कर बकते रहते हैं—'लाओ यजमान। भांग मर्ची और लड्डू खावें, पीवें। यजमान की जै-जै मनावें।' दूसरे जल में कछुवे काट ही खाते हैं, जिन के मारे स्नान करना भी घाट पर कठिन पड़ता है। तीसरे आकाश के ऊपर लालमुख के बन्दर पगड़ी, टोपी, गहने और जूते तक भी नहीं छोड़ें, काट खावें, धक्के दे, गिरा मार डालें और ये तीनों पोप और पोप जी के चेलों के पूजनीय हैं। मनों चना आदि अन्न कछुवे और बन्दरों को चना गुड़ आदि और चौबों की दक्षिणा और लड्डुओं से

उन के सेवक सेवा किया करते हैं। और वृन्दावन जब था तब था अब तो वेश्यावनवत् लल्ला लल्ली और गुरु चेली आदि की लीला फैल रही है। वैसे ही दीपमालिका का मेला गोवर्द्धन और व्रजयात्रा में भी पोपों की बन पड़ती है। कुरुक्षेत्र में भी वही जीविका की लीला समझ लो। इन में जो कोई धार्मिक परोपकारी पुरुष है इस पोपलीला से पृथक् हो जाता है।

(प्रश्न) यह मूर्त्तिपूजा और तीर्थ सनातन से चले आते हैं; झूठे क्योंकर हो सकते हैं?

(उत्तर) तुम सनातन किस को कहते हो। जो सदा से चला आता है। जो यह सदा से होता तो वेद और ब्राह्मणादि ऋषिमुनिकृत पुस्तकों में इन का नाम क्यों नहीं? यह मूर्त्तिपूजा अढ़ाई तीन सहस्र वर्ष के इधर-इधर वाममार्गी और जैनियों से चली है। प्रथम आर्य्यावर्त्त में नहीं थी। और ये तीर्थ भी नहीं थे। जब जैनियों ने गिरनार, पालिटाना, शिखर, शत्रुञ्जय और आबू आदि तीर्थ बनाये, उन के अनुकूल इन लोगों ने भी बना लिये। जो कोई इनके आरम्भ की परीक्षा करना चाहें वे पण्डों की पुरानी से पुरानी बही और तांबे के पत्र आदि लेख देखें तो निश्चय हो जायेगा कि ये सब तीर्थ पाँच सौ अथवा सहस्र वर्ष से इधर ही बने हैं। सहस्र वर्ष के उधर का लेख किसी के पास नहीं निकलता, इस से आधुनिक हैं।

(प्रश्न) जो-जो तीर्थ वा नाम का माहात्म्य अर्थात् जैसे **'अन्यक्षेत्रे कृतं पापं काशीक्षेत्रे विनश्यति ।'** इत्यादि बातें हैं वे सच्ची हैं वा नहीं?

(उत्तर) नहीं। क्योंकि जो पाप छूट जाते हों तो दरिद्रों को धन, राजपाट; अन्धों को आंख मिल जाती; कोढ़ियों का कोढ़ आदि रोग छूट जाता; ऐसा नहीं होता। इसलिये पाप वा पुण्य किसी का नहीं छूटता।

(प्रश्न) गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति॥ १॥
हरिर्हरति पापानि हरिरित्यक्षरद्वयम्॥ २॥
प्रातःकाले शिवं दृष्ट्वा निशि पापं विनश्यति ।
आजन्मकृतं मध्याह्ने सायाह्ने सप्तजन्मनाम्॥ ३॥

इत्यादि श्लोक पोपपुराण के हैं। जो सैकड़ों सहस्रों कोश दूर से भी गङ्गा-गङ्गा कहै तो उस के सब पाप नष्ट होकर वह विष्णुलोक अर्थात् वैकुण्ठ को जाता है॥ १॥

'हरि' इन दो अक्षरों का नामोच्चारण सब पाप को हर लेता है। वैसे ही राम, कृष्ण, शिव, भगवती आदि नामों का माहात्म्य है॥ २॥

और जो मनुष्य प्रातःकाल में शिव अर्थात् लिङ्ग वा उस की मूर्त्ति का दर्शन करे तो रात्रि में किया हुआ; मध्याह्न में दर्शन से जन्म भर का, सायंकाल में दर्शन करने से सात जन्मों का पाप छूट जाता है। यह दर्शन का माहात्म्य है॥ ३॥

क्या झूठा हो जायेगा?

(उत्तर) मिथ्या होने में क्या शङ्का? क्योंकि गङ्गा-गङ्गा वा हरे, राम, कृष्ण, नारायण, शिव और भगवती नामस्मरण से पाप कभी नहीं छूटता। जो छूटे तो दुःखी कोई न रहै। और पाप करने से कोई भी न डरे, जैसे आजकल पोपलीला में पाप बढ़ कर हो रहे हैं। मूढ़ों को विश्वास है कि हम पाप कर नामस्मरण वा तीर्थयात्रा करेंगे तो पापों की निवृत्ति हो जायेगी। इसी विश्वास पर पाप करके इस लोक और परलोक का नाश करते हैं, पर किया हुआ पाप भोगना ही पड़ता है।

(प्रश्न) तो कोई तीर्थ नामस्मरण सत्य है वा नहीं?

(उत्तर) है—वेदादि सत्य शास्त्रों का पढ़ना-पढ़ाना, धार्मिक विद्वानों का संग, परोपकार, धर्मानुष्ठान, योगाभ्यास, निर्वैर, निष्कपट, सत्यभाषण, सत्य का मानना; सत्य करना; ब्रह्मचर्य्य, आचार्य्य, अतिथि, माता, पिता की सेवा; परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना; शान्ति, जितेन्द्रियता, सुशीलता, धर्मयुक्तपुरुषार्थ, ज्ञान-विज्ञान आदि शुभगुण, कर्म दुःखों से तारने वाले होने से तीर्थ हैं। और जो जल स्थलमय हैं वे तीर्थ कभी नहीं हो सकते क्योंकि **'जना यैस्तरन्ति तानि तीर्थानि'** मनुष्य जिन करके दुःखों से तरें उन का नाम तीर्थ है। जल स्थल तराने वाले नहीं किन्तु डुबाकर मारने वाले हैं। प्रत्युत नौका आदि का नाम तीर्थ हो सकता है क्योंकि उन से भी समुद्र आदि को तरते हैं।

समानतीर्थे वासी॥ १॥ —अष्टा० ४। ४। १०७॥

नमस्तीर्थ्याय च ॥२॥ यजुः० अ० १६॥

जो ब्रह्मचारी एक आचार्य्य से और एक शास्त्र को साथ-साथ पढ़ते हों वे सब सतीर्थ्य अर्थात् समानतीर्थसेवी होते हैं॥ १॥ जो वेदादि शास्त्र और सत्यभाषणादि धर्म लक्षणों में साधु हो उस को अन्नादि पदार्थ देना और उन से विद्या लेनी इत्यादि तीर्थ कहाते हैं॥ २॥ नामस्मरण इस को कहते हैं कि—

यस्य नाम महद्यशः ॥ यजु०॥

परमेश्वर का नाम बड़े यश अर्थात् धर्मयुक्त कामों का करना है। जैसे ब्रह्म, परमेश्वर, ईश्वर, न्यायकारी, दयालु, सर्वशक्तिमान् आदि नाम परमेश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव से हैं। जैसे ब्रह्म सब से बड़ा, परमेश्वर ईश्वरों का ईश्वर, ईश्वर सामर्थ्ययुक्त, न्यायकारी कभी अन्याय नहीं करता, दयालु सब पर कृपादृष्टि रखता, सर्वशक्तिमान् अपने सामर्थ्य ही से सब जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय करता, सहाय किसी का नहीं लेता। ब्रह्मा विविध जगत् के पदार्थों का बनानेहारा, विष्णु सब में व्यापक होकर रक्षा करता, महादेव सब देवों का देव, रुद्र प्रलय करनेहारा आदि नामों के अर्थों को अपने में धारण करे अर्थात् बड़े कामों से बड़ा हो, समर्थों में समर्थ हो, सामर्थ्यों को बढ़ाता जाय। अधर्म कभी न करे। सब पर दया रक्खे। सब प्रकार के साधनों को समर्थ करे। शिल्प विद्या से नाना प्रकार के पदार्थों को बनावे। सब संसार में अपने आत्मा के तुल्य सुख-दुःख समझे। सब की रक्षा करे। विद्वानों में विद्वान् होवे। दुष्ट कर्म और दुष्ट कर्म करने वालों को प्रयत्न से दण्ड और सज्जनों की रक्षा करे। इस प्रकार परमेश्वर के नामों का अर्थ जानकर परमेश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के अनुकूल अपने गुण, कर्म, स्वभाव को करते जाना ही परमेश्वर का नामस्मरण है।

(प्रश्न) गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

इत्यादि गुरुमाहात्म्य तो सच्चा है? गुरु के पग धोके पीना, जैसी आज्ञा करे वैसा करना, गुरु लोभी हो तो वामन के समान, क्रोधी हो तो नरसिंह के सदृश, मोही हो तो राम के तुल्य और कामी हो तो कृष्ण के समान गुरु को जानना। चाहै गुरु जी कैसा ही पाप करे तो भी अश्रद्धा न करनी। सन्त वा गुरु के दर्शन को जाने में पग-पग में अश्वमेध का फल होता है। यह बात ठीक है वा नहीं?

(उत्तर) ठीक नहीं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर और परब्रह्म परमेश्वर के नाम हैं। उसके तुल्य गुरु कभी नहीं हो सकता। यह गुरुमाहात्म्य गुरुगीता भी एक बड़ी पोपलीला है। गुरु तो माता, पिता, आचार्य और अतिथि होते हैं। उन की सेवा करनी, उन से विद्या, शिक्षा लेनी देनी, शिष्य और गुरु का काम है। परन्तु जो गुरु लोभी, क्रोधी, मोही और कामी हो तो उस को सर्वथा छोड़ देना, शिक्षा करनी, सहज शिक्षा से न माने तो अर्घ्य, पाद्य अर्थात् ताड़ना दण्ड प्राणहरण तक भी करने में कुछ भी दोष नहीं। जो विद्यादि सदगुणों में गुरुत्व नहीं है, झूठ-मूठ कण्ठी तिलक वेद-विरुद्ध मन्त्रोपदेश करने वाले हैं वे गुरु ही नहीं किन्तु गड़रिये जैसे हैं। जैसे गड़रिये अपनी भेड़ बकरियों से दूध आदि से प्रयोजन सिद्ध करते हैं वैसे ही शिष्यों के चेले चेलियों के धन हर के अपना प्रयोजन करते हैं। वे—

दो०— **गुरु लोभी चेला लालची, दोनों खेलें दाव ।**
भवसागर में डूबते, बैठ पत्थर की नाव॥

गुरु समझें कि चेले चेली कुछ न कुछ देवें हींगे और चेला समझे कि चलो गुरु झूठे सोगन्द खाने, पाप छुड़ाने आदि लालच से दोनों कपटमुनि भवसागर के दुःख में डूबते हैं। जैसे पत्थर की नौका में बैठने वाले समुद्र में डूब मरते हैं। ऐसे गुरु और चेलों के मुख पर धूड़ राख पड़े। उन के पास कोई भी खड़ा न रहै जो रहै वह दुःखसागर में पड़ेगा। जैसी पोपलीला पुजारी पुराणियों ने चलाई है वैसी इन गड़रिये गुरुओं ने भी लीला मचाई है। यह सब काम स्वार्थी लोगों का है । जो परमार्थी लोग हैं वे आप दुःख पावें तो भी जगत् का उपकार करना नहीं छोड़ते। और गुरु माहात्म्य तथा गुरुगीता आदि भी इन्हीं लोभी कुकर्मी गुरुओं ने बनाई है ।

(प्रश्न) अष्टादशपुराणानां कर्त्ता सत्यवतीसुतः॥ १॥
इतिहासपुराणाभ्यां वेदार्थमुपबृंहयेत्॥ २॥ —महाभारते॥
पुराणानि खिलानि च॥ ३॥ —मनु०॥
इतिहासपुराणः पञ्चमो वेदानां वेदः॥ ४॥ —छान्दोग्य॥
दशमेऽहनि किञ्चित्पुराणमाचक्षीत॥ ५॥
पुराणविद्या वेदः॥ ६॥ सूत्रम्॥

अठारह पुराणों के कर्त्ता व्यास जी हैं। व्यासवचन का प्रमाण अवश्य करना चाहिये॥ १॥

इतिहास, महाभारत, अठारह पुराणों से वेदों का अर्थ पढ़ें पढ़ावें क्योंकि इतिहास और पुराण वेदों ही के अर्थ के अनुकूल हैं॥ २॥

पितृकर्म में पुराण और हरिवंश की कथा सुनें॥ ३॥

इतिहास और पुराण पञ्चम वेद कहाते हैं॥ ४॥

अश्वमेध की समाप्ति में दशमे दिन थोड़ी सी पुराण की कथा सुनें॥ ५॥

पुराण विद्या वेदार्थ के जनाने ही से वेद हैं॥ ६॥

इत्यादि प्रमाणों से पुराणों का प्रमाण और इन के प्रमाणों से मूर्त्तिपूजा और तीर्थों का भी प्रमाण है क्योंकि पुराणों में मूर्त्तिपूजा और तीर्थों का विधान है।

(उत्तर) जो अठारह पुराणों के कर्त्ता व्यास जी होते तो उन में इतने गपोड़े न होते। क्योंकि शारीरक सूत्रों, योगशास्त्र के भाष्य आदि व्यासोक्त ग्रन्थों के देखने

से विदित होता है कि व्यास जी बड़े विद्वान्, सत्यवादी, धार्मिक, योगी थे। वे ऐसी मिथ्या कथा कभी न लिखते। और इस से यह सिद्ध होता है कि जिन सम्प्रदायी परस्पर विरोधी लोगों ने भागवतादि नवीन कपोलकल्पित ग्रन्थ बनाये हैं उन में व्यास जी के गुणों का लेश भी नहीं था। और वेदशास्त्र विरुद्ध असत्यवाद लिखना व्यास जी सदृश विद्वानों का काम नहीं किन्तु यह काम वेदशास्त्र विरोधी, स्वार्थी, अविद्वान् लोगों का है। इतिहास और पुराण शिवपुराणादि का नाम नहीं । किन्तु—

ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानि कल्पान् गाथानाराशंसीरिति॥

यह ब्राह्मण और सूत्रों का वचन है। ऐतरेय, शतपथ, साम और गोपथ ब्राह्मण ग्रन्थों ही के इतिहास, पुराण, कल्प, गाथा और नाराशंसी ये पांच नाम हैं। (इतिहास) जैसे जनक और याज्ञवल्क्य का संवाद। (पुराण) जगदुत्पत्ति आदि का वर्णन। (कल्प) वेद शब्दों के सामर्थ्य का वर्णन, अर्थ निरूपण करना (गाथा) किसी का दृष्टान्त दार्ष्टान्तरूप कथा प्रसंग कहना। (नाराशंसी) मनुष्यों के प्रशंनीय वा अप्रशंनीय कर्मों का कथन करना। इन ही से वेदार्थ का बोध होता है।

पितृकर्म अर्थात् ज्ञानियों की प्रशंसा में कुछ सुनना। अश्वमेध के अन्त में भी इन्हीं का सुनना लिखा है क्योंकि जो व्यासकृत ग्रन्थ हैं उन का सुनना सुनाना व्यास जी के जन्म के पश्चात् हो सकता है; पूर्व नहीं। जब व्यास जी का जन्म भी नहीं था तब वेदार्थ को पढ़ते-पढ़ाते सुनते-सुनाते थे। इसीलिये सब से प्राचीन ब्राह्मण ग्रन्थों ही में यह सब घटना हो सकती हैं। इन नवीन कपोलकल्पित श्रीमद्भागवत शिवपुराणादि मिथ्या वा दूषित ग्रन्थों में नहीं घट सकती?

जब व्यास जी ने वेद पढ़े और पढ़ा कर वेदार्थ फैलाया इसीलिये उन का नाम 'वेदव्यास' हुआ। क्योंकि व्यास कहते हैं वार पार की मध्य रेखा को अर्थात् ऋग्वेद के आरम्भ से लेकर अथर्ववेद के पार पर्यन्त चारों वेद पढ़े थे और शुकदेव तथा जैमिनि आदि शिष्यों को पढ़ाये भी थे। नहीं तो उन का जन्म का नाम 'कृष्णद्वैपायन' था जो कोई यह कहते हैं कि वेदों को व्यास जी ने इकट्ठे किये यह बात झूठी है क्योंकि व्यास जी के पिता, पितामह, प्रपितामह, पराशर, शक्ति वशिष्ठ और ब्रह्मा आदि ने भी चारों वेद पढ़े थे; यह बात क्योंकर घट सके?

(प्रश्न) पुराणों में सब बातें झूठी हैं वा कोई सच्ची भी है?

(उत्तर) बहुत सी बातें झूठी हैं और कोई घुणाक्षरन्याय से सच्ची भी हैं। जो सच्ची हैं वे वेदादि सत्यशास्त्रों की और जो झूठी हैं वे इन पोपों के पुराणरूप घर की हैं। जैसे शिवपुराण में शैवों ने शिव को परमेश्वर मान के विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र, गणेश और सूर्य्यादि को उन के दास ठहराये। वैष्णवों ने विष्णुपुराण आदि में विष्णु को परमात्मा माना और शिव आदि को विष्णु के दास। देवीभागवत में देवी को परमेश्वरी और शिव, विष्णु आदि को उस के किंकर बनाये। गणेशखण्ड में गणेश को ईश्वर और शेष सब को दास बनाये। भला यह बात इन सम्प्रदायी लोगों की नहीं तो किन की है? एक मनुष्य के बनाने में ऐसी परस्पर विरुद्ध बात नहीं होती तो विद्वान् के बनाये में कभी नहीं आ सकती। इस में एक बात को सच्ची मानें तो दूसरी झूठी और जो दूसरी को सच्ची मानें तो तीसरी झूठी और जो तीसरी को सच्ची मानें अन्य सब झूठी होती हैं।

शिवपुराणवाले ने शिव से, विष्णुपुराणवालों ने विष्णु से, देवीपुराणवाले ने देवी से, गणेशखण्डवाले ने गणेश से, सूर्य्यपुराणवाले ने सूर्य्य से और वायुपुराणवाले

ने वायु से सृष्टि की उत्पत्ति प्रलय लिखके पुनः एक-एक से एक-एक जो जगत् के कारण लिखे उन की उत्पत्ति एक-एक से लिखी। कोई पूछे कि जो जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय करनेवाला है वह उत्पन्न और जो उत्पन्न होता है वह सृष्टि का कारण कभी हो सकता है वा नहीं? तो केवल चुप रहने के सिवाय कुछ भी नहीं कह सकते और इन सब के शरीर की उत्पत्ति भी इसी से हुई होगी । फिर वे आप सृष्टि पदार्थ और परिच्छिन्न होकर संसार की उत्पत्ति के कर्त्ता क्योंकर हो सकते हैं? और उत्पत्ति भी विलक्षण-विलक्षण प्रकार से मानी है जो कि सर्वथा असम्भव है। जैसे—

शिवपुराण में शिव ने इच्छा की कि मैं सृष्टि करूं तो एक नारायण जलाशय को उत्पन्न कर उस की नाभि से कमल, कमल में से ब्रह्मा उत्पन्न हुआ। उस ने देखा कि सब जलमय है। जल की अंजलि उठा देख जल में पटक दी। उस से एक बुद्बुदा उठा और बुद्बुदे में से एक पुरुष उत्पन्न हुआ। उस ने ब्रह्मा से कहा कि हे पुत्र! सृष्टि उत्पन्न कर। ब्रह्मा ने उस से कहा कि मैं तेरा पुत्र नहीं किन्तु तू मेरा पुत्र है। उन में विवाद हुआ और दिव्यसहस्रवर्षपर्यन्त दोनों जल पर लड़ते रहे। तब महादेव ने विचार किया कि जिन को मैंने सृष्टि करने के लिये भेजा था वे दोनों आपस में लड़ झगड़ रहे हैं। तब उन दोनों के बीच में से एक तेजोमय लिङ्ग उत्पन्न हुआ और वह शीघ्र आकाश में चला गया। उस को देख के दोनों साश्चर्य हो गये। विचारा कि इस का आदि अन्त लेना चाहिये। जो आदि अन्त लेके शीघ्र आवे वह पिता और पीछे वा थाह लेके न आवे वह पुत्र कहावे। विष्णु कूर्म का स्वरूप धर के नीचे को चला और ब्रह्मा हंस का शरीर धारण करके ऊपर को उड़ा। दोनों मनोवेग से चले। दिव्यसहस्रवर्ष पर्य्यन्त दोनों चलते रहे तो भी उस का अन्त न पाया। तब नीचे से ऊपर विष्णु और ऊपर से नीचे ब्रह्मा चला। ब्रह्मा ने विचारा कि जो वह छेड़ा ले आया होगा तो मुझ को पुत्र बनना पड़ेगा। ऐसा सोच रहा था कि उसी समय एक गाय और केतकी का वृक्ष ऊपर से उतर आया। उन से ब्रह्मा ने पूछा कि तुम कहां से आये? उन्होंने कहा हम सहस्र वर्षों से इस लिङ्ग के आधार से चले आते हैं। ब्रह्मा ने पूछा कि इस लिङ्ग का थाह है वा नहीं? उन्होंने कहा कि नहीं। ब्रह्मा ने उन से कहा कि तुम हमारे साथ चलो और ऐसी साक्षी देओ कि मैं इस लिङ्ग के शिर पर दूध की धारा वर्षाती थी और वृक्ष कहे कि मैं फूल वर्षाता था; ऐसी साक्षी देओ तो मैं तुम को ठिकाने पर ले चलूं। उन्होंने कहा कि हम झूठी साक्षी नहीं देंगे। तब ब्रह्मा कुपित होकर बोला जो साक्षी नहीं देओगे तो मैं तुम को अभी भस्म करे देता हूं। तब दोनों ने डर के कहा कि हम जैसी तुम कहते हो वैसी साक्षी देवेंगे। तब तीनों नीचे की ओर चले।

विष्णु प्रथम ही आ गये थे, ब्रह्मा भी पहुंचा। विष्णु से पूछा कि तू थाह ले आया वा नहीं? तब विष्णु बोला मुझ को इसका थाह नहीं मिला। ब्रह्मा ने कहा मैं ले आया। विष्णु ने कहा कोई साक्षी देओ। तब गाय और वृक्ष ने साक्षी दी। हम दोनों लिङ्ग के सिर पर थे। तब लिङ्ग में से शब्द निकला और वृक्ष को शाप दिया कि जिस से तू झूठ बोला इसलिये तेरा फूल मुझ पर वा अन्य देवता पर जगत् में कहीं नहीं चढ़ेगा और जो कोई चढ़ावेगा उस का सत्यानाश होगा। गाय को शाप दिया जिस मुख से तू झूठ बोली उसी से विष्ठा खाया करेगी। तेरे

मुख की पूजा कोई नहीं करेगा किन्तु पूँछ की करेंगे। और ब्रह्मा को शाप दिया कि तू मिथ्या बोला इसलिये तेरी पूजा संसार में कहीं न होगी। और विष्णु को वर दिया तू सत्य बोला इस से तेरी पूजा सर्वत्र होगी।

पुनः दोनों ने लिङ्ग की स्तुति की। उस से प्रसन्न होकर उस लिङ्ग से एक जटाजूट मूर्त्ति निकल आई और कहा कि तुम को मैंने सृष्टि करने के लिये भेजा था; झगड़े में क्यों लगे रहे? ब्रह्मा और विष्णु ने कहा कि हम विना सामग्री सृष्टि कहां से करें। तब महादेव ने अपनी जटा में से एक भस्म का गोला निकाल कर दिया कि जाओ इस में से सब सृष्टि बनाओ; इत्यादि।

भला कोई इन पुराणों के बनाने वालों से पूछे कि जब सृष्टि तत्त्व और पञ्चमहाभूत भी नहीं थे तो ब्रह्मा, विष्णु, महादेव के शरीर, जल, कमल, लिङ्ग, गाय और केतकी का वृक्ष और भस्म का गोला क्या तुम्हारे बाबा के घर में से आ गिरे?

वैसे ही भागवत में विष्णु की नाभि से कमल, कमल से ब्रह्मा और ब्रह्मा के दहिने पग के अंगूठे से स्वायम्भव और बायें अंगूठे से शतरूपा राणी, ललाट से रुद्र और मरीचि आदि दश पुत्र, उन से दक्ष प्रजापति, उन की तेरह लड़कियों का विवाह कश्यप से, उनमें से दिति से दैत्य, दनु से दानव, अदिति से आदित्य, विनता से पक्षी, कद्रू से सर्प, सरमा से कुत्ते, स्याल आदि और अन्य स्त्रियों से हाथी, घोड़े, ऊंट, गधा, भैंसा, घास, फूस और बबूल आदि वृक्ष कांटे सहित उत्पन्न हो गये।

वाह रे वाह! भागवत के बनाने वाले लालभुजक्कड़? क्या कहना! तुझ को ऐसी-ऐसी मिथ्या बातें लिखने में तनिक भी लज्जा और शर्म न आई, निपट अन्धा ही बन गया। स्त्री पुरुष के रजवीर्य के संयोग से मनुष्य तो बनते ही हैं परमेश्वर की सृष्टिक्रम के विरुद्ध पशु, पक्षी, सर्प आदि कभी उत्पन्न नहीं हो सकते। और हाथी, ऊँट, सिंह, कुत्ता, गधा और वृक्षादि का स्त्री के गर्भाशय में स्थित होने का अवकाश कहां हो सकता है? और सिंह आदि उत्पन्न होकर अपने मां बाप को क्यों न खा गये? और मनुष्य-शरीर से पशु पक्षी वृक्षादि का उत्पन्न होना क्यों कर सम्भव हो सकता है?

शोक है, इन लोगों की रची हुई इस महा असम्भव लीला पर जिस ने संसार को अभी तक भ्रमा रक्खा है! भला इन महाझूठ बातों को वे अन्धे पोप और बाहर भीतर की फूटी आंखों वाले उन के चेले सुनते और मानते हैं। बड़े ही आश्चर्य की बात है कि ये मनुष्य हैं वा अन्य कोई!!! इन भागवतादि पुराणों के बनाने हारे जन्मते ही क्यों नहीं गर्भ ही में नष्ट हो गये? वा जन्मते समय मर क्यों न गये? क्योंकि इन पापों से बचते तो आर्यावर्त्त देश दुःखों से बच जाता।

(प्रश्न) इन बातों में विरोध नहीं आ सकता क्योंकि **'जिसका विवाह उसी के गीत'** जब विष्णु की स्तुति करने लगे तब विष्णु को परमेश्वर अन्य को दास; जब शिव के गुण गाने लगे तब शिव को परमात्मा अन्य को किंकर बनाया। और परमेश्वर की माया में सब बन सकता है। मनुष्य से पशु आदि और पशु आदि से मनुष्यादि की उत्पत्ति परमेश्वर कर सकता है। देखो! विना कारण अपनी माया से सब सृष्टि खड़ी कर दी है। उस में कौन सी बात अघटित है? जो करना चाहै सो सब कर सकता है।

(उत्तर) अरे भोले लोगो! विवाह में जिस के गीत गाते हैं उस को सब से बड़ा और दूसरों को छोटा वा निन्दा अथवा उस को सब का बाप तो नहीं बनाते? कहो पोप जी। तुम भाट और खुशामदी चारणों से भी बढ़ कर गप्पी हो अथवा नहीं? कि जिस के पीछे लगो उसी को सब से बड़ा बनाओ और जिस से विरोध करो उस को सब से नीचे ठहराओ। तुम को सत्य और धर्म से क्या प्रयोजन? किन्तु तुम को तो अपने स्वार्थ ही से काम है।

माया मनुष्य में हो सकती है। जो कि छली कपटी हैं उन्हीं को मायावी कहते हैं। परमेश्वर में छल कपटादि दोष न होने से उस को मायावी नहीं कह सकते। जो आदि सृष्टि में कश्यप और कश्यप की स्त्रियों से पशु, पक्षी, सर्प्प, वृक्षादि हुए होते तो आजकल भी वैसे सन्तान क्यों नहीं होते? सृष्टिक्रम जो पहले लिख आये; वही ठीक है। और अनुमान है कि पोप जी यहीं से धोखा खाकर बके होंगे—

तस्मात् काश्यप्य इमाः प्रजाः॥

शतपथ में यह लिखा है कि यह सब सृष्टि कश्यप की बनाई हुई है।

कश्यपः कस्मात् पश्यको भवतीति॥ —निरु०॥

सृष्टिकर्त्ता परमेश्वर का नाम कश्यप इसलिये है कि पश्यक अर्थात् **'पश्यतीति पश्यः एव पश्यकः'** जो निर्भ्रम होकर चराचर जगत्, सब जीव और इन के कर्म, सकल विद्याओं को यथावत् देखता है और **'आद्यन्तविपर्ययश्च'** इस महाभाष्य के वचन से आदि का अक्षर अन्त और अन्त का वर्ण आदि में आने से 'पश्यक' से 'कश्यप' बन गया है। इस का अर्थ न जान के भांग के लोटे चढ़ा अपना जन्म सृष्टिविरुद्ध कथन करने में नष्ट किया।

जैसे मार्कण्डेयपुराण के दुर्गापाठ में देवों के शरीरों से तेज निकल के एक देवी बनी। उस ने महिषासुर को मारा। रक्तबीज के शरीर से एक बिन्दु भूमि में पड़ने से उस के सदृश रक्तबीज के उत्पन्न होने से सब जग्त में रक्तबीज भर जाना, रुधिर की नदी का बह चलना आदि गपोड़े बहुत से लिख रक्खे हैं। जब रक्तबीज से सब जगत् भर गया था तो देवी और देवी का सिंह और उस की सेना कहां रही थी? जो कहो कि देवी से दूर-दूर रक्तबीज थे तो सब जगत् रक्तबीज से नहीं भरा था? जो भर जाता तो पशु, पक्षी, मनुष्यादि प्राणी और जलस्थ मगरमच्छ, कच्छप, मत्स्यादि, वनस्पति आदि वृक्ष कहां रहते? यहां यही निश्चित जानना कि दुर्गापाठ बनाने वाले पोप के घर में भाग कर चले गये होंगे!!! देखिये! क्या ही असम्भव कथा का गपोड़ा भंग की लहरी में उड़ाया जिसका ठौर न ठिकाना।

अब जिस को **'श्रीमद्भागवत'** कहते हैं उस की लीला सुनो! ब्रह्मा जी को नारायण ने चतुःश्लोकी भागवत का उपदेश किया—

ज्ञानं परमगुह्यं मे यद्विज्ञानसमन्वितम् ।
सरहस्यं तदङ्गञ्च गृहाण गदितं मया॥ —भागवत॥

अर्थ—हे ब्रह्मा जी! तू मेरा परमगुह्य ज्ञान जो विज्ञान और रहस्ययुक्त और धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का अंग है उसी का मुफ से ग्रहण कर। जब विज्ञानयुक्त ज्ञान कहा तो परम अर्थात् ज्ञान का विशेषण रखना व्यर्थ है और गुह्य विशेषण से रहस्य भी पुनरुक्त है। जब मूल श्लोक अनर्थक हैं तो ग्रन्थ अनर्थक क्यों नहीं?

जब भागवत का मूल ही झूठा है तो उस का वृक्ष क्यों न झूठा होगा? ब्रह्मा जी को वर दिया कि—

भवान् कल्पविकल्पेषु न विमुह्यति कर्हिचित्॥ —भाग०॥

आप कल्प सृष्टि और विकल्प प्रलय में भी मोह को कभी न प्राप्त होंगे ऐसा लिख के पुनः दशमस्कन्ध में मोहित होके वत्सहरण किया। इन दोनों में से एक बात सच्ची दूसरी झूठी। ऐसा होकर दोनों बात झूठी। जब वैकुण्ठ में राग, द्वेष, क्रोध, ईर्ष्या, दुःख नहीं है तो सनकादिकों को वैकुण्ठ के द्वार में क्रोध क्यों हुआ? जो क्रोध हुआ तो वह स्वर्ग ही नहीं। तब जय विजय द्वारपाल थे। स्वामी की आज्ञा पालनी अवश्य थी। उन्होंने सनकादिकों को रोका तो क्या अपराध हुआ? इस पर विना अपराध शाप ही नहीं लग सकता। जब शाप लगा कि तुम पृथिवी में गिर पड़ो, इस कहने से यह सिद्ध होता है कि वहां पृथिवी न होगी। आकाश, वायु, अग्नि और जल होगा तो ऐसा द्वार मन्दिर और जल किस के आधार थे? पुनः जय विजय ने सनकादिकों की स्तुति की कि महाराज! पुनः हम वैकुण्ठ में कब आवेंगे? उन्होंने उन से कहा कि जो प्रेम से नारायण की भक्ति करोगे तो सातवें जन्म और जो विरोध से भक्ति करोगे तो तीसरे जन्म वैकुण्ठ को प्राप्त होओगे।

इस में विचारना चाहिये कि जय विजय नारायण के नौकर थे। उन की रक्षा और सहाय करना नारायण का कर्त्तव्य काम था। जो अपने नौकरों को विना अपराध दुःख देवें उन को उन का स्वामी दण्ड न देवे तो उस के नौकरों की दुर्दशा सब कोई कर डाले। नारायण को उचित था कि जय विजय का सत्कार और सनकादिकों को खूब दण्ड देते, क्योंकि उन्होंने भीतर आने के लिये हठ क्यों किया? और नौकरों से लड़े, क्यों शाप दिया? उन के बदले सनकादिकों को पृथिवी में डाल देना नारायण का न्याय था? जब इतना अन्धेर नारायण के घर में है तो उस के सेवक जो कि वैष्णव कहाते हैं उनकी जितनी दुर्दशा हो उतनी थोड़ी है। पुनः वे हिरण्याक्ष और हिण्यकशिपु उत्पन्न हुए। उन में से हिरण्याक्ष को वराह ने मारा। उस की कथा इस प्रकार से लिखी है कि वह पृथिवी को चटाई के समान लपेट शिराने धर सो गया। विष्णु ने वराह का स्वरूप धारण करके शिर के नीचे से पृथिवी को मुख में धर लिया। वह उठा। दोनों की लड़ाई हुई। वराह ने हिरण्याक्ष को मार डाला।

इन से कोई पूछे पृथिवी गोल है वा चटाई के समान? तो कुछ न कह सकेंगे, क्योंकि पौराणिक लोग भूगोलविद्या के शत्रु हैं। भला जब लपेट कर शिराने धर ली, आप किस पर सोया? और वराह जी किस पर पग धर के दौड़ आये? पृथिवी को तो वराह जी ने मुख में रक्खी फिर दोनों किस पर खड़े होके लड़े। वहां तो और कोई ठहरने की जगह नहीं थी। किन्तु भागवतादि पुराण बनाने वाले पोप जी की छाती पर ठड़े होके लड़े होंगे? परन्तु पोप जी किस पर सोया होगा? यह बात—जैसे **'गप्पी के घर गप्पी आये बोले गप्पी जी'** जब मिथ्यावादियों के घर में दूसरे गप्पी लोग आते हैं फिर गप्प मारने में क्या कमती, इसी प्रकार की है!

अब रहा हिरण्यकशिपु, उस का लड़का जो प्रह्लाद था वह भक्त हुआ था। उस का पिता पढ़ाने को पाठशाला में भेजता था। तब वह अध्यापकों से कहता था कि मेरी पट्टी में राम-राम लिख देओ। जब उस के बाप ने सुना, उस से कहा—तू हमारे शत्रु का भजन क्यों करता है? छोकरे ने न माना। तब उस के बाप ने

उस को बांध के पहाड़ से गिराया, कूप में डाला परन्तु उस को कुछ न हुआ। तब उसने एक लोहे का खम्भा आगी में तपाके उस से बोला जो तेरा इष्टदेव राम सच्चा हो तो तू इस को पकड़ने से न जलेगा। प्रह्लाद पकड़ने को चला। मन में शङ्का हुई जलने से बचूंगा वा नहीं? नारायण ने उस खम्भे पर छोटी-छोटी चीटियों की पंक्ति चलाई। उस को निश्चय हुआ, झट खम्भे को जा पकड़ा। वह फट गया। उस में से नृसिंह निकला और उस के बाप को पकड़ पेट फाड़ मार डाला। पश्चात् प्रह्लाद को लाड़ से चाटने लगा। प्रह्लाद से कहा वर मांग। उस ने अपने पिता की सद्गति होनी मांगी। नृसिंह ने वर दिया कि तेरे इक्कीस पुरुषे सद्गति को गये।

अब देखो! यह भी दूसरे गपोड़े का भाई गपोड़ा है। किसी भागवत सुनने वा बांचनेवाले को पकड़ पहाड़ के ऊपर से गिरावे तो कोई न बचावे चकनाचूर होकर मर ही जावे। प्रह्लाद को उस का पिता पढ़ने के लिये भेजता था; क्या बुरा काम किया था? और वह प्रह्लाद ऐसा मूर्ख पढ़ना छोड़ वैरागी होना चाहता था। जो जलते हुए खम्भे से कीड़ी चढ़ने लगी और प्रह्लाद स्पर्श करने से न जला। इस बात को जो सच्ची माने उस को भी खम्भे के साथ लगा देना चाहिये। जो यह न जले तो जानो वह भी न जला होगा और नृसिंह भी क्यों न जला?

प्रथम तीसरे जन्म में वैकुण्ठ में आने का वर सनकादिक का था। क्या उस को तुम्हारा नारायण भूल गया? भागवत की रीति से ब्रह्मा, प्रजापति, कश्यप, हिरण्यकशिपु चौथी पीढ़ी में होता है। इक्कीस पीढ़ी प्रह्लाद की हुई भी नहीं पुनः इक्कीस पुरुषे सद्गति को गये कह देना कितना प्रमाद है। और फिर वे ही हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु, रावण, कुम्भकरण, पुनः शिशुपाल, दन्तवक्त्र उत्पन्न हुए तो नृसिंह का वर कहां उड़ गया? ऐसी प्रमाद की बात प्रमादी करते, सुनते और मानते हैं; विद्वान् नहीं।

पूतना और अक्रूर जी के विषय में देखो—

रथेन वायुवेगेन जगाम गोकुलं प्रति॥

अक्रूर जी कंस के भेजने से वायु के वेग के समान दौड़ने वाले घोड़ों के रथ पर बैठ कर सूर्योदय से चले और चार मील गोकुल में सूर्यास्त समय पहुंचे। शायद घोड़े भागवत बनाने वाले की परिक्रमा करते रहे होंगे? वा मार्ग भूल कर भागवत बनाने वाले के घर में घोड़े हाँकने वाले और अक्रूर जी आकर सो गये होंगे? पूतना का शरीर छः कोश चौड़ा और बहुत सा लम्बा लिखा है। मथुरा और गोकुल के बीच में उस को मारकर श्रीकृष्ण जी ने डाल दिया। जो ऐसा होता तो मथुरा और गोकुल दोनों दबकर इस पोप जी का घर भी दब गया होता। और अजामेल की कथा ऊटपटांग लिखी है—उसने नारद के कहने से अपने लड़के का नाम 'नारायण' रक्खा था। मरते समय अपने पुत्र को पुकारा। बीच में नारायण कूद पड़े। क्या नारायण उस के अन्तःकरण के भाव को नहीं जानते थे कि वह अपने पुत्र को पुकारता है मुझ को नहीं। जो ऐसा ही नाम-माहात्म्य है तो आज कल भी नारायण के स्मरण करने वालों के दुःख छुड़ाने को क्यों नहीं आते। यदि यह बात सच्ची हो तो कैदी लोग नारायण नारायण करके क्यों नहीं छूट जाते?

ऐसा ही ज्योतिष शास्त्र से विरुद्ध सुमेरु पर्वत का परिमाण लिखा है । और प्रियव्रत राजा के रथ के चक्र की लीक से समुद्र हुए। उञ्चास कोटि योजन पृथिवी है । इत्यादि मिथ्या बातों का गपोड़ा भागवत में लिखा है जिस का कुछ

पारावार नहीं।

और यह भागवत बोबदेव का बनाया है जिसके भाई जयदेव ने 'गीतगोविन्द' बनाया है। देखो! उसने ये श्लोक अपने बनाये 'हिमाद्रि' नामक ग्रन्थ में लिखे हैं कि श्रीमद्भागवतपुराण मैंने बनाया है। उस लेख के तीन पत्र हमारे पास थे। उन में से एक पत्र खो गया है। उस पत्र में श्लोकों का जो आशय था उस आशय के हम ने दो श्लोक बना के नीचे लिखे हैं। जिस को देखना हो वह हिमाद्रि ग्रन्थ में देख लेवें—

हिमाद्रेः सचिवस्यार्थे सूचना क्रियतेऽधुना।
स्कन्धाऽध्यायकथानां च यत्प्रमाणं समासतः॥१॥
श्रीमद्भागवतं नाम पुराणं च मयेरितम्।
विदुषा बोबदेवेन श्रीकृष्णस्य यशोऽन्वितम्॥२॥

इसी प्रकार के नष्टपत्र में श्लोक थे। अर्थात् राजा के सचिव हिमाद्रि ने बोबदेव पण्डित से कहा कि मुझ को तुम्हारे बनाये श्रीमद्भागवत के सम्पूर्ण सुनने का अवकाश नहीं है इसलिये तुम संक्षेप में श्लोकबद्ध सूचीपत्र बनाओ जिस को देख के मैं श्रीमद्भागवत की कथा को संक्षेप में जान लूं। सो नीचे लिखा हुआ सूचीपत्र उस बोबदेव ने बनाया। उस में से उस नष्टपत्र में दस १० श्लोक खो गये हैं ग्यारहवें श्लोक से लिखते हैं। ये नीचे लिखे श्लोक सब बोबदेव के बनाये हैं। वे—

बोधयन्तीति हि प्राहुः श्रीमद्भागवतं पुनः।
पञ्च प्रश्नाः शौनकस्य सूतस्यात्रोत्तरं त्रिषु॥११॥
प्रश्नावतारयोश्चैव व्यासस्य निर्वृतिः कृतात्।
नारदस्यात्र हेतूक्तिः प्रतीत्यर्थं स्वजन्म च ॥१२॥
सुप्तघ्नं द्रोण्यभिभवस्तदस्त्रात्पाण्डवा वनम्।
भीष्मस्य स्वपदप्राप्तिः कृष्णस्य द्वारिकागमः॥१३॥
श्रोतुः परीक्षितो जन्म धृतराष्ट्रस्य निर्गमः।
कृष्णमर्त्यत्यागसूचा ततः पार्थमहापथः॥१४॥
इत्यष्टादशभिः पादैरध्यायार्थः क्रमात् स्मृतः।
स्वपरप्रतिबन्धोनं स्फीतं राज्यं जहौ नृपः॥१५॥
इति वै राज्ञो दार्ढ्योक्तौ प्रोक्ता द्रौणिजयादयः। इति प्रथमः स्कन्धः॥१॥

इत्यादि बारह स्कन्धों का सूचीपत्र इसी प्रकार बोबदेव पण्डित ने बनाकर हिमाद्रि सचिव को दिया। जो विस्तार देखना चाहै वह बोबदेव के बनाये हिमाद्रि ग्रन्थ में देख लेवे। इसी प्रकार अन्य पुराणों की भी लीला समझनी। परन्तु उन्नीस, बीस, इक्कीस, एक दूसरे से बढ़ कर हैं।

देखो! श्रीकृष्ण जी का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उन का गुण, कर्म, स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश है। जिस में कोई अधर्म का आचरण श्रीकृष्ण जी ने जन्म से मरणपर्य्यन्त बुरा काम कुछ भी किया हो ऐसा नहीं लिखा। और इस भागवत वाले ने अनुचित मनमाने दोष लगाये हैं। दूध, दही, मक्खन आदि की चोरी; और कुब्जादासी से समागम, परस्त्रियों से रासमण्डल क्रीडा आदि मिथ्या दोष श्रीकृष्ण जी में लगाये हैं। इस को पढ़-पढ़ा

सुन-सुना के अन्य मत वाले श्रीकृष्ण जी की बहुत सी निन्दा करते हैं। जो यह भागवत न होता तो श्रीकृष्ण जी के सदृश महात्माओं की झूठी निन्दा क्योंकर होती? शिवपुराण में बारह ज्योतिर्लिङ्ग लिखे हैं। उसकी कथा सर्वथा असम्भव है। नाम धरा है ज्योतिर्लिङ्ग और जिस में प्रकाश का लेश भी नहीं। रात्रि को विना दीप किये लिङ्ग भी अन्धेरे में नहीं दीखते, ये सब लीला पोप जी की है।

(प्रश्न) जब वेद पढ़ने का सामर्थ्य नहीं रहा तब स्मृति, जब स्मृति के पढ़ने की बुद्धि नहीं रही तब शास्त्र, जब शास्त्र पढ़ने का सामर्थ्य न रहा तब पुराण बनाये, केवल स्त्री और शूद्रों के लिये। क्योंकि इन को वेद पढ़ने सुनने का अधिकार नहीं है।

(उत्तर) यह बात मिथ्या है। क्योंकि सामर्थ्य पढ़ने-पढ़ाने ही से होता है और वेद पढ़ने सुनने का अधिकार सब को है। देखो! गार्गी आदि स्त्रियां और छान्दोग्य में जानश्रुति शूद्र ने भी वेद 'रैक्यमुनि' के पास पढ़ा था और यजुर्वेद के २६वें अध्याय के दूसरे मन्त्र में स्पष्ट लिखा है कि वेदों के पढ़ने और सुनने का अधिकार मनुष्यमात्र को है। पुनः जो ऐसे-ऐसे मिथ्या ग्रन्थ बना लोगों को सत्यग्रन्थों से विमुख कर जाल में फंसा अपने प्रयोजन को साधते हैं वे महापापी क्यों नहीं?

देखो! ग्रहों का चक्र कैसा चलाया है कि जिस ने विद्याहीन मनुष्यों को ग्रस लिया है।

आ कृष्णेन रजसा ॥१॥ सूर्य का मन्त्र ।
इमं देवाऽअसपत्नꣳसुवध्वम्० ॥२॥ चन्द्र ।
अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः० ॥३॥ मङ्गल ।
उद्बुध्यस्वाग्ने० ॥४॥ बुध ।
बृहस्पतेऽअति यदर्यो ॥५॥ बृहस्पति ।
शुक्रमन्धसः ॥६॥ शुक्र ।
शन्नो देवीरभिष्टय० ॥७॥ शनि ।
कया नश्चित्र आ भुव० ॥८॥ राहु और-
केतुं कृण्वन्नकेतवे ॥९॥ इस को केतु की कण्डिका कहते हैं ।

(आ कृष्णेन०) यह सूर्य्य और भूमि का आकर्षण॥ १ ॥ दूसरा राजगुण विधायक॥ २ ॥ तीसरा अग्नि॥ ३ ॥ और चौथा यजमान॥ ४ ॥ पांचवां विद्वान्॥ ५ ॥ छठा वीर्य्य अन्न॥ ६ ॥ सातवां जल, प्राण और परमेश्वर॥ ७ ॥ आठवां मित्र॥ ८ ॥ नववां ज्ञानग्रहण का विधायक मन्त्र है; ग्रहों के वाचक नहीं॥ ९ ॥ अर्थ न जानने से भ्रमजाल में पड़े हैं।

(प्रश्न) ग्रहों का फल होता है वा नहीं?

(उत्तर) जैसा पोपलीला का है वैसा नहीं किन्तु जैसा सूर्य्य चन्द्रमा की किरण द्वारा उष्णता शीतलता अथवा ऋतुवत्कालचक्र के सम्बन्धमात्र से अपनी प्रकृति के अनूकुल प्रतिकूल सुख-दुःख के निमित्त होते हैं। परन्तु जो पोपलीला वाले कहते

हैं सुनो 'महाराज'! सेठ जी! यजमानो? तुम्हारे आज आठवां चन्द्र सूर्य्यादि क्रूर घर में आये हैं। अढ़ाई वर्ष का शनैश्चर पग में आया है। तुम को बड़ा विघ्न होगा। घर द्वार छुड़ाकर परदेश में घुमावेगा परन्तु जो तुम ग्रहों का दान, जप, पाठ, पूजा कराओगे तो दुःख से बचोगे।'

इन से कहना चाहिये कि सुनो पोप जी! तुम्हारा और ग्रहों का क्या सम्बन्ध है? ग्रह क्या वस्तु हैं?

(पोप जी) दैवाधीनं जगत्सर्वं मन्त्राधीनाश्च देवताः।
ते मन्त्रा ब्राह्मणाधीनास्तस्माद् ब्राह्मणदैवतम्॥

देखो! कैसा प्रमाण है—देवताओं के आधीन सब जगत्, मन्त्रों के आधीन सब देवता और वे मन्त्र ब्राह्मणों के आधीन हैं इसलिये ब्राह्मण देवता कहाते हैं। क्योंकि चाहैं जिस देवता को मन्त्र के बल से बुला, प्रसन्न कर, काम सिद्ध कराने का हमारा ही अधिकार है। जो हम में मन्त्रशक्ति न होती तो तुम्हारे से नास्तिक हम को संसार में रहने ही न देते।

(सत्यवादी) जो चोर, डाकू, कुकर्मी लोग हैं वे भी तुम्हारे देवताओं के आधीन होंगे? देवता ही उन से दुष्ट काम कराते होंगे ? जो वैसा है तो तुम्हारे देवता और राक्षसों में कुछ भेद न रहेगा। जो तुम्हारे आधीन मन्त्र हैं उन से तुम चाहो सो करा सकते हो तो उन मन्त्रों से देवताओं को वश कर, राजाओं के कोष उठवा कर अपने घर में भरकर बैठ के आनन्द क्यों नहीं भोगते? घर-घर में शनैश्चरादि के तैल आदि का छायादान लेने को मारे-मारे क्यों फिरते हो? और जिस को तुम कुबेर मानते हो उस को वश करके चाहो जितना धन लिया करो। बिचारे गरीबों को क्यों लूटते हो?

तुम को दान देने से ग्रह प्रसन्न और न देने से अप्रसन्न होते हों तो हम को सूर्य्यादि ग्रहों की प्रसन्नता अप्रसन्नता प्रत्यक्ष दिखलाओ। जिस को ८वां सूर्य चन्द्र और दूसरे को तीसरा हो उन दोनों को ज्येष्ठ महीने में बिना जूते पहिने तपी हुई भूमि पर चलाओ। जिस पर प्रसन्न हैं उन के पग, शरीर न जलने और जिस पर क्रोधित हैं उन के जल जाने चाहिये तथा पौष मास में दोनों को नंगे कर पौर्णमासी की रात्रि भर मैदान में रक्खें। एक को शीत लगे दूसरे को नहीं तो जानो कि ग्रह क्रूर और सौम्य दृष्टि वाले होते हैं।

और क्या तुम्हारे ग्रह सम्बन्धी हैं? और तुम्हारी डाक वा तार उन के पास आता जाता है? अथवा तुम उन के वा वे तुम्हारे पास आते जाते हैं? जो तुम में मन्त्रशक्ति हो तो तुम स्वयं राजा वा धनाढ्य क्यों नहीं बन जाओ? वा शत्रुओं को अपने वश में क्यों नहीं कर लेते हो?

नास्तिक वह होता है जो वेद ईश्वर की आज्ञा वेदविरुद्ध पोपलीला चलावे। जब तुम को ग्रहदान न देवे जिस पर ग्रह है वही ग्रहदान को भोगे तो क्या चिन्ता है? जो तुम कहो कि नहीं हम ही को देने से वे प्रसन्न होते हैं अन्य को देने से नहीं तो क्या तुम ने ग्रहों का ठेका ले लिया है? जो ठेका लिया हो तो सूर्य्यादि को अपने घर में बुला के जल मरो।

सच तो यह है कि सूर्य्यादि लोक जड़ हैं। वे न किसी को दुःख और न सुख देने की चेष्टा कर सकते हैं किन्तु जितने तुम ग्रहदानोपजीवी हो वे सब तुम ग्रहों की मूर्त्तियां हो क्योंकि ग्रह शब्द का अर्थ भी तुम में ही घटित होता है।

'ये गृह्णन्ति ते ग्रहाः' जो ग्रहण करते हैं उन का नाम ग्रह है। जबतक तुम्हारे चरण राजा, रईस सेठ साहूकार और दरिद्रों के पास नहीं पहुंचते तबतक किसी को नवग्रह का स्मरण भी नहीं होता। जब तुम साक्षात् सूर्य शनैश्चरादि मूर्त्तिमान् क्रूर रूप धर उन पर जा चढ़ते हो तब विना ग्रहण किये उन को कभी नहीं छोड़ते और जो कोई तुम्हारे ग्रास में न आवे उन की निन्दा नास्तिकादि शब्दों से करते फिरते हो।

(पोप जी) देखो! ज्योतिष का प्रत्यक्ष फल। आकाश में रहने वाले सूर्य, चन्द्र और राहु, केतु का संयोग रूप ग्रहण को पहले ही कह देते हैं। जैसा यह प्रत्यक्ष होता है वैसा ग्रहों का भी फल प्रत्यक्ष हो जाता है। देखो! धनाढ्य, दरिद्र, राजा, रंक, सुखी, दुःखी ग्रहों ही से होते हैं।

(सत्यवादी) जो यह ग्रहणरूप प्रत्यक्ष फल है सो गणितविद्या का है; फलित का नहीं। जो गणितविद्या है वह सच्ची और फलितविद्या स्वाभाविक सम्बन्ध जन्य को छोड़ के झूठी है। जैसे अनुलोम प्रतिलोम घूमनेवाले पृथिवी और चन्द्र के गणित से स्पष्ट विदित होता है कि अमुक समय, अमुक देश, अमुक अवयव में सूर्य्य वा चन्द्रग्रहण होगा। जैसे—

छादयत्यर्कमिन्दुर्विधुं भूमिभाः। यह सिद्धान्तशिरोमणि का वचन है।

और इसी प्रकार सूर्यसिद्धान्तादि में भी है अर्थात् जब सूर्य और भूमि के मध्य में चन्द्रमा आता है तब सूर्यग्रहण और जब सूर्य और चन्द्र के बीच में भूमि आती है तब चन्द्रग्रहण होता है। अर्थात् चन्द्रमा की छाया भूमि पर और भूमि की छाया चन्द्रमा पर पड़ती है। सूर्य प्रकाशरूप होने से सम्मुख छाया किसी की नहीं पड़ती किन्तु जैसे प्रकाशमान सूर्य्य वा दीप से देहादि की छाया उल्टी जाती है वैसे ही ग्रहण में समझो।

जो धनाढ्य, दरिद्र, प्रजा, राजा, रंक होते हैं वे अपने कर्मों से होते हैं ग्रहों से नहीं। बहुत से ज्योतिषी लोग अपने लड़के, लड़की का विवाह ग्रहों की गणितविद्या के अनुसार करते हैं पुनः उन में विरोध वा विधवा अथवा मृतस्त्रीक पुरुष हो जाता है। जो फल सच्चा होता तो ऐसा क्यों होता? इसलिये कर्म की गति सच्ची और ग्रहों की गति सुख दुःख भोग में कारण नहीं।

भला ग्रह आकाश में और पृथिवी भी आकाश में बहुत दूर पर हैं इन का सम्बन्ध कर्त्ता और कर्मों के साथ साक्षात् नहीं। कर्म्म और कर्म्म के फल का कर्त्ता, भोक्ता जीव और कर्मों के फल भोगानेहारा परमात्मा है।

जो तुम ग्रहों का फल मानो तो इस का उत्तर देओ कि जिस क्षण में एक मनुष्य का जन्म होता है जिस को तुम ध्रुवा त्रुटि मानकर जन्मपत्र बनाते हो उसी समय में भूगोल पर दूसरे का जन्म होता है वा नहीं? जो कहो नहीं तो झूठ, और जो कहो होता है तो एक चक्रवर्ती के सदृश भूगोल में दूसरा चक्रवर्ती राजा क्यों नहीं होता? हां! इतना तुम कह सकते हो कि यह लीला हमारे उदर भरने की है तो कोई मान भी लेवे।

(प्रश्न) क्या गरुड़पुराण भी झूठा है?

(उत्तर) हां असत्य है।

(प्रश्न) फिर मरे हुए जीव की क्या गति होती है?

(उत्तर) जैसे उस के कर्म हैं।

(प्रश्न) जो यमराज राजा, चित्रगुप्त मन्त्री, उस के बड़े भयंकर गण कज्जल के पर्वत के तुल्य शरीरवाले जीव को पकड़ कर ले जाते हैं। पाप, पुण्य के अनुसार नरक, स्वर्ग में डालते हैं। उस के लिये दान, पुण्य, श्राद्ध, तर्पण, गोदानादि, वैतरणी नदी तरने के लिये करते हैं। ये सब बातें झूठ क्योंकर हो सकती हैं।

(उत्तर) ये बातें पोपलीला के गपोड़े हैं। जो अन्यत्र के जीव वहां जाते हैं उन का धर्मराज चित्रगुप्त आदि न्याय करते हैं तो वे यमलोक के जीव पाप करें तो दूसरा यमलोक मानना चाहिये कि वहां के न्यायाधीश उन का न्याय करें और पर्वत के समान यमगणों के शरीर हों तो दीखते क्यों नहीं? और मरने वाले जीव को लेने में छोटे द्वार में उन की एक अंगुली भी नहीं जा सकती और सड़क गली में क्यों नहीं रुक जाते। जो कहो कि वे सूक्ष्म देह भी धारण कर लेते हैं तो प्रथम पर्वतवत् शरीर के बड़े-बड़े हाड़ पोप जी विना अपने घर के कहां धरेंगे?

जब जंगल में आगी लगती है तब एकदम पिपीलिकादि जीवों के शरीर छूटते हैं। उन को पकड़ने के लिये असंख्य यम के गण आवें तो वहां अन्धकार हो जाना चाहिये और जब आपस में जीवों को पकड़ने को दौड़ेंगे तब कभी उन के शरीर ठोकर खा जायेंगे तो जैसे पहाड़ के बड़े-बड़े शिखर टूट कर पृथिवी पर गिरते हैं वैसे उनके बड़े-बड़े अवयव गरुड़पुराण के बांचने, सुनने वालों के आंगन में गिर पड़ेंगे तो वे दब मरेंगे वा घर का द्वार अथवा सड़क रुक जायगी तो वे कैसे निकल और चल सकेंगे?

श्राद्ध, तर्पण, पिण्डप्रदान उन मरे हुए जीवों को तो नहीं पहुंचता किन्तु मृतकों के प्रतिनिधि पोप जी के घर, उदर और हाथ में पहुँचता है। जो वैतरणी के लिये गोदान लेते हैं वह तो पोप जी के घर में अथवा कसाई आदि के घर में पहुंचता है। वैतरणी पर गाय नहीं जाती पुनः किस की पूंछ पकड़ कर तरेगा? और हाथ तो यहीं जलाया वा गाड़ दिया गया फिर पूंछ को कैसे पकड़ेगा? यहां एक दृष्टान्त इस बात में उपयुक्त है कि—

एक जाट था। उस के घर में एक गाय बहुत अच्छी और बीस सेर दूध देनेवाली थी। दूध उस का बड़ा स्वादिष्ठ होता था। कभी-कभी पोप जी के मुख में भी पड़ता था। उस का पुरोहित यही ध्यान कर रहा था कि जब जाट का बुड्ढा बाप मरने लगेगा तब इसी गाय का सङ्कल्प करा लूंगा। कुछ दिनों में दैवयोग से उस के बाप का मरण समय आया। जीभ बन्द हो गई और खाट से भूमि पर ले लिया अर्थात् प्राण छोड़ने का समय आ पहुंचा। उस समय जाट के इष्ट मित्र और सम्बन्धी भी उपस्थित हुए थे। तब पोप जी ने पुकारा कि यजमान! अब तू इसके हाथ से गोदान करा। जाट ने १०) रुपया निकाल पिता के हाथ में रख कर बोला पढ़ो सङ्कल्प। पोप जी बोला—वाह-वाह! क्या बाप वारंवार मरता है? इस समय तो साक्षात् गाय को लाओ जो दूध देती हो, बुड्ढी न हो, सब प्रकार उत्तम हो। ऐसी गौ का दान करना चाहिये।

(जाट जी) हमारे पास तो एक ही गाय है उस के विना हमारे लड़के-बालों का निर्वाह न हो सकेगा इसलिये उसको न दूंगा। लो २०) रुपये का सङ्कल्प पढ़ देओ और इन रुपयों से दूसरी दुधार गाय ले लेना।

(पोप जी) वाह जी वाह! तुम अपने बाप से भी गाय को अधिक समझते हो? क्या अपने बाप को वैतरणी नदी में डुबा कर दुःख देना चाहते हो। तुम अच्छे

सुपुत्र हुए? तब तो पोप जी की ओर सब कुटुम्बी हो गये क्योंकि उन सब को पहले ही पोप जी ने बहका रक्खा था और उस समय भी इशारा कर दिया। सब ने मिल कर हठ से उसी गाय का दान उसी पोप को दिला दिया। उस समय जाट कुछ भी न बोला। उसका पिता मर गया और पोप जी बच्छा सहित गाय और दोहने की बटलोही को ले अपने घर में गाय बछड़े को बांध बटलोही धर पुनः जाट के घर आया और मृतक के साथ श्मशानभूमि में जाकर दाहकर्म्म कराया। वहाँ भी कुछ-कुछ पोपलीला चलाई। पश्चात् दशगात्र सपिण्डी कराने आदि में भी उस को मूंडा। महाब्राह्मणों ने भी लूटा और भुक्खड़ों ने भी बहुत सा माल पेट में भरा अर्थात् जब सब क्रिया हो चुकी तब जाट ने जिस किसी के घर से दूध मांग-मूंग निर्वाह किया। चौदहवें दिन प्रातःकाल पोप जी के घर पहुंचा। देखा तो गाय दुह, बटलोई भर, पोप जी की उठने की तैयारी थी। इतने ही में जाट जी पहुंचे। उस को देख पोप जी बोला आइये! यजमान बैठिये!

(जाट जी) तुम भी पुरोहित जी इधर आओ।

(पोप जी) अच्छा दूध धर आऊं।

(जाट जी) नहीं-नहीं दूध की बटलोई इधर लाओ। पोप जी विचारे जा बैठे और बटलोई सामने धर दी।

(जाट जी) तुम बड़े झूठे हो।

(पोप जी) क्या झूठ किया?

(जाट जी) कहो! तुमने गाय किसलिये ली थी?

(पोप जी) तुम्हारे पिता के वैतरणी नदी तरने के लिये।

(जाट जी) अच्छा तो वहां वैतरणी के किनारे पर गाय क्यों न पहुंचाई? हम तो तुम्हारे भरोसे पर रहे और तुम अपने घर बांध बैठे। न जाने मेरे बाप ने वैतरणी में कितने गोते खाये होंगे?

(पोप जी) नहीं-नहीं, वहां इस दान के पुण्य के प्रभाव से दूसरी गाय बन कर उतार दिया होगा।

(जाट जी) वैतरणी नदी यहाँ से कितनी दूर और किधर की ओर है।

(पोप जी) अनुमान से कोई तीस क्रोड़ कोश दूर है क्योंकि उञ्चास कोटि योजन पृथिवी है और दक्षिण नैर्ऋत दिशा में वैतरणी नदी है।

(जाट जी) इतनी दूर तुम्हारी चिट्ठी वा तार का समाचार गया हो उस का उत्तर आया हो कि वहां पुण्य की गाय बन गई। अमुक के पिता को पार उतार दिया; दिखलाओ?

(पोप जी) हमारे पास गरुड़पुराण के लेख के विना डाक वा तारवर्की दूसरी कोई नहीं।

(जाट जी) इस गरुड़पुराण को हम सच्चा कैसे मानें?

(पोप जी) जैसे सब मानते हैं।

(जाट जी) यह पुस्तक तुम्हारे पुरुषाओं ने तुम्हारी जीविका के लिये बनाया है क्योंकि पिता को विना अपने पुत्रों के कोई प्रिय नहीं। जब मेरा पिता मेरे पास चिट्ठी पत्री वा तार भेजेगा तभी मैं वैतरणी नदी के किनारे गाय पहुंचा दूंगा और उन को पार उतार पुनः गाय को घर में ले आ दूध को मैं और मेरे लड़के बाले पिया करेंगे। लाओ! दूध की भरी हुई बटलोही, गाय, बछड़ा लेकर जाट जी अपने

घर को चला।

(पोप जी) तुम दान देकर लेते हो तुम्हारा सत्यानाश हो जायगा।

(जाट जी) चुप रहो! नहीं तो तेरह दिन लों दूध के विना जितना दुःख हम ने पाया है सब कसर निकाल दूंगा। तब पोप जी चुप रहे और जाट जी गाय बछड़ा ले अपने घर पहुंचे।

जब ऐसे ही जाट जी के से पुरुष हों तो पोपलीला संसार में न चले। जो ये लोग कहते हैं कि दशगात्र के पिण्डों से दश अंग सपिण्डी करने से शरीर के साथ जीव का मेल होके अंगुष्ठमात्र शरीर बन के पश्चात् यमलोक को जाता है तो मरती समय यमदूतों का आना व्यर्थ होता है। त्रयोदशाह के पश्चात् आना चाहिये। जो शरीर बन जाता हो तो अपनी स्त्री, सन्तान और इष्ट मित्रों के मोह से क्यों नहीं लौट आता है?

(प्रश्न) स्वर्ग में कुछ भी नहीं मिलता जो दान किया जाता है वही वहां मिलता है। इसलिये सब दान करने चाहिये।

(उत्तर) उस तुम्हारे स्वर्ग से यही लोक अच्छा है जिस में धर्मशाला हैं, लोग दान देते हैं, इष्ट मित्र और जाति में खूब निमन्त्रण होते हैं, अच्छे-अच्छे वस्त्र मिलते हैं, तुम्हारे कहने प्रमाणे स्वर्ग में कुछ भी नहीं मिलता। ऐसे निर्दय, कृपण, कंगले स्वर्ग में पोप जी जाके खराब होवें, वहाँ भले-भले मनुष्यों का क्या काम?

(प्रश्न) जब तुम्हारे कहने से यमलोक और यम नहीं हैं तो मर कर जीव कहां जाता और इन का न्याय कौन करता है?

(उत्तर) तुम्हारे गरुड़पुराण का कहा हुआ तो अप्रमाण है परन्तु जो वेदोक्त है कि—

यमेन । वायुना । सत्यराजन् ॥

इत्यादि वेदवचनों से निश्चय है कि 'यम' नाम वायु का है। शरीर छोड़ के साथ अन्तरिक्ष में जीव रहते हैं और जो सत्यकर्त्ता पक्षपातरहित परमात्मा 'धर्म्मराज' है वही सब का न्यायकर्त्ता है।

(प्रश्न) तुम्हारे कहने से गोदानादि दान किसी को न देना और न कुछ दान पुण्य करना, ऐसा सिद्ध होता है।

(उत्तर) यह तुम्हारा कहना सर्वथा व्यर्थ है क्योंकि सुपात्रों को, परोपकारियों को परोपकारार्थ सोना, चांदी, हीरा, मोती, माणिक, अन्न, जल, स्थान, वस्त्र, गाय आदि दान अवश्य करना उचित है किन्तु कुपात्रों को कभी न देना चाहिये।

(प्रश्न) कुपात्र और सुपात्र का लक्षण क्या है?

(उत्तर) जो छली, कपटी, स्वार्थी, विषयी, काम, क्रोध, लोभ, मोह से युक्त, परहानि करने वाले लम्पटी, मिथ्यावादी, अविद्वान्, कुसंगी, आलसी; जो कोई दाता हो उसके पास बारम्बार मांगना, धरना देना, ना किये पश्चात् भी हठता से मांगते ही जाना, सन्तोष न होना, जो न दे उस की निन्दा करना, शाप और गालिप्रदानादि देना। अनेक वार जो सेवा करे और एक वार न करे तो उस का शत्रु बन जाना, ऊपर से साधु का वेश बना लोगों को बहकाकर ठगना और अपने पास पदार्थ हो तो भी मेरे पास कुछ भी नहीं है कहना, सब को फुसला फुसलू कर स्वार्थ सिद्ध करना, रात दिन भीख मांगने ही में प्रवृत्त रहना, निमन्त्रण दिये पर यथेष्ट भंगादि मादक द्रव्य खा पीकर बहुत सा पराया पदार्थ खाना, पुनः उन्मत्त होकर प्रमादी

होना, सत्य-मार्ग का विरोध और झूठ-मार्ग में अपने प्रयोजनार्थ चलना, वैसे ही अपने चेलों को केवल अपनी ही सेवा करने का उपदेश करना, अन्य योग्य पुरुषों की सेवा करने का नहीं, सद्विद्यादि प्रवृत्ति के विरोधी, जगत् के व्यवहार अर्थात् स्त्री, पुरुष, माता, पिता, सन्तान, राजा, प्रजा इष्टमित्रों में अप्रीति कराना कि ये सब असत्य हैं और जगत् भी मिथ्या है। इत्यादि दुष्ट उपदेश करना आदि कुपात्रों के लक्षण हैं।

और जो ब्रह्मचारी, जितेन्द्रिय, वेदादि विद्या के पढ़ने पढ़ाने हारे, सुशील, सत्यवादी, परोपकारप्रिय, पुरुषार्थी, उदार, विद्या धर्म की निरन्तर उन्नति करनेहारे, धर्मात्मा, शान्त, निन्दा स्तुति में हर्ष शोकरहित, निर्भय, उत्साही, योगी, ज्ञानी, सृष्टिक्रम, वेदाज्ञा, ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभावानुकूल वर्त्तमान करनेहारे, न्याय की रीति युक्त, पक्षपातरहित, सत्योपदेश और सत्यशास्त्रों के पढ़ने पढ़ानेहारे के परीक्षक, किसी की लल्लो पत्तो न करें, प्रश्नों के यथार्थ समाधानकर्त्ता, अपने आत्मा के तुल्य अन्य का भी सुख, दुःख, हानि, लाभ समझने वाले, अविद्यादि क्लेश, हठ, दुराग्रहाऽभिमानरहित, अमृत के समान अपमान और विष के समान मान को समझने वाले, सन्तोषी, जो कोई प्रीति से जितना देवे उतने ही से प्रसन्न, एक वार आपत्काल में मांगे भी न देने वा वर्जने पर भी दुःख वा बुरी चेष्टा न करना, वहां से झट लौट जाना, उस की निन्दा न करना, सुखी पुरुषों के साथ मित्रता, दुखियों पर करुणा, पुण्यात्माओं से आनन्द और पापियों से उपेक्षा अर्थात् रागद्वेषरहित रहना, सत्यमानी, सत्यवादी, सत्यकारी, निष्कपट, ईर्ष्याद्वेषरहित, गम्भीराशय, सत्पुरुष, धर्म से युक्त और सर्वथा दुष्टाचार से रहित अपने तन मन धन को परोपकार करने में लगाने वाले, पराये सुख के लिये अपने प्राणों को भी समर्पितकर्त्ता इत्यादि शुभलक्षणयुक्त सुपात्र होते हैं। परन्तु दुर्भिक्षादि आपत्काल में अन्न, जल, वस्त्र और औषधि पथ्य स्थान के अधिकारी सब प्राणीमात्र हो सकते हैं।

(प्रश्न) दाता कितने प्रकार के होते हैं?

(उत्तर) तीन प्रकार के—उत्तम, मध्यम और निकृष्ट। उत्तम दाता उस को कहते हैं जो देश काल और पात्र को जानकर सत्यविद्या, धर्म की उन्नतिरूप परोपकारार्थ देवे। मध्यम वह है जो कीर्ति वा स्वार्थ के लिए दान करे। नीच वह है कि अपना वा पराया कुछ उपकार न कर सके किन्तु वेश्यागमनादि वा भांड भाटों आदि को देवे, देते समय तिरस्कार अपमानादि कुचेष्टा भी करे, पात्र कुपात्र का कुछ भी भेद न जाने किन्तु **'सब अन्न बारह पसेरी'** बेचने वालों के समान विवाद लड़ाई, दूसरे धर्मात्मा को दुःख देकर सुखी होने के लिये दिया करे, वह अधम दाता है। अर्थात् जो परीक्षापूर्वक विद्वान् धर्मात्माओं का सत्कार करे वह उत्तम और जो कुछ परीक्षा करे वा न करे परन्तु जिस में अपनी प्रशंसा हो उस को मध्यम और जो अन्धाधुन्ध परीक्षारहित निष्फल दान दिया करे वह नीच दाता कहाता है।

(प्रश्न) दान के फल यहां होते हैं वा परलोक में?

(उत्तर) सर्वत्र होते हैं।

(प्रश्न) स्वयं होते हैं वा कोई फल देने वाला है?

(उत्तर) फल देने वाला ईश्वर है। जैसे कोई चोर डाकू स्वयं बन्दीघर में जाना नहीं चाहता, राजा उस को अवश्य भेजता है, धर्मात्माओं के सुख की रक्षा करता, भुगाता, डाकू आदि से बचाकर उन को सुख में रखता है वैसे ही परमात्मा

सब को पाप पुण्य के दुःख और सुखरूप फलों को यथावत् भुगाता है।

(प्रश्न) जो ये गरुड़पुराणादि ग्रन्थ हैं वेदार्थ वा वेद की पुष्टि करने वाले हैं वा नहीं?

(उत्तर) नहीं, किन्तु वेद के विरोधी और उलटे चलते हैं तथा तन्त्र भी वैसे ही हैं। जैसे कोई मनुष्य एक का मित्र सब संसार का शत्रु हो, वैसा ही पुराण और तन्त्र का मानने वाला पुरुष होता है क्योंकि एक दूसरे से विरोध कराने वाले ये ग्रन्थ हैं। इन का मानना किसी विद्वान् का काम नहीं किन्तु इन को मानना अविद्वत्ता है।

देखो! शिवपुराण में त्रयोदशी, सोमवार, आदित्यपुराण में रवि; चन्द्रखण्ड में सोमग्रह वाले मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनैश्चर, राहु, केतु के; वैष्णव एकादशी; वामन की द्वादशी; नृसिंह वा अनन्त की चतुर्दशी; चन्द्रमा की पौर्णमासी; दिक्पालों की दशमी; दुर्गा की नौमी; वसुओं की अष्टमी; मुनियों की सप्तमी; कार्तिक स्वामी की षष्ठी; नाग की पञ्चमी; गणेश की चतुर्थी; गौरी की तृतीया; अश्विनीकुमार की द्वितीया; आद्यादेवी की प्रतिपदा और पितरों की अमावास्या पुराणरीति से ये दिन उपवास करने के हैं। और सर्वत्र यही लिखा है कि जो मनुष्य इन वार और तिथियों में अन्न, पान ग्रहण करेगा वह नरकगामी होगा।

अब पोप और पोप जी के चेलों को चाहिये कि किसी वार अथवा किसी तिथि में भोजन न करें क्योंकि जो भोजन वा पान किया तो नरकगामी होंगे। अब 'निर्णयसिन्धु', 'धर्मसिन्धु', 'व्रतार्क' आदि ग्रन्थ जो कि प्रमादी लोगों के बनाये हैं उन्हीं में एक-एक व्रत की ऐसी दुर्दशा की है कि जैसे एकादशी को शैव, दशमी विद्धा, कोई द्वादशी में एकादशी व्रत करते हैं अर्थात् क्या बड़ी विचित्र पोपलीला है कि भूखे मरने में भी वाद विवाद ही करते हैं। जो एकादशी का व्रत चलाया है उस में अपना स्वार्थपन ही है और दया कुछ भी नहीं। वे कहते हैं—

एकादश्यामन्ने पापानि वसन्ति॥

जितने पाप हैं वे सब एकादशी के दिन अन्न में वसते हैं। इस पोप जी से पूछना चाहिये कि किस के पाप उस में बसते हैं? तेरे वा तेरे पिता आदि के? जो सब के पाप एकादशी में जा बसें तो एकादशी के दिन किसी को दुःख न रहना चाहिये। ऐसा तो नहीं होता किन्तु उलटा क्षुधा आदि से दुःख होता है। दुःख पाप का फल है। इस से भूखे मरना पाप है। इस का बड़ा माहात्म्य बनाया है जिस की कथा बांच के बहुत ठगे जाते हैं। उस में एक गाथा है कि—

ब्रह्मलोक में एक वेश्या थी। उस ने कुछ अपराध किया। उस को शाप हुआ। तू पृथिवी पर गिर। उस ने स्तुति की कि मैं पुनः स्वर्ग में क्योंकर आ सकूँगी? उस ने कहा जब कभी एकादशी के व्रत का फल तुझे कोई देगा तभी तू स्वर्ग में आ जायेगी। वह विमान सहित किसी नगर में गिर पड़ी। वहाँ के राजा ने उस से पूछा कि तू कौन है। तब उस ने सब वृत्तान्त कह सुनाया और कहा कि जो कोई मुझे एकादशी का फल अर्पण करे तो फिर भी स्वर्ग को जा सकती हूं। राजा ने नगर में खोज कराया। कोई भी एकादशी का व्रत करने वाला न मिला। किन्तु एक दिन किसी शूद्र स्त्री पुरुष में लड़ाई हुई थी। क्रोध से स्त्री दिन रात भूखी रही थी। दैवयोग से उस दिन एकादशी ही थी। उस ने कहा कि मैंने एकादशी जानकर तो नहीं की; अकस्मात् उस दिन भूखी रह गई थी। ऐसे राजा के भृत्यों

से कहा। तब तो वे उस को राजा के सामने ले आये। उस से राजा ने कहा कि तू इस विमान को छू। उस ने छूआ तो उसी समय विमान ऊपर को उड़ गया। यह तो विना जाने एकादशी के व्रत का फल है। जो जानके करे तो उस के फल का क्या पारावार है!!!

वाह रे आंख के अन्धे लोगो! जो यह बात सच्ची हो तो हम एक पान का बीड़ा जो कि स्वर्ग में नहीं होता; भेजना चाहते हैं। सब एकादशी वाले अपना-अपना फल दे दो। जो एक पानबीड़ा ऊपर को चला जायेगा तो पुनः लाखों क्रोड़ों पान वहां भेजेंगे और हम भी एकादशी किया करेंगे और जो ऐसा न होगा तो तुम लोगों को इस भूखे मरनेरूप आपत्काल से बचावेंगे।

इन चौबीस एकादशियों के नाम पृथक्-पृथक् रक्खे हैं। किसी का 'धनदा' किसी का 'कामदा' किसी का 'पुत्रदा' किसी का 'निर्जला'। बहुत से दरिद्र, बहुत से कामी और बहुत से निर्वंशी लोग एकादशी करके बूढ़े हो गये और मर भी गये परन्तु धन, कामना और पुत्र प्राप्त न हुआ और ज्येष्ठ महीने के शुक्लपक्ष में कि जिस समय एक घड़ी भर जल न पावे तो मनुष्य व्याकुल हो जाता है; व्रत करने वालों को महादुःख प्राप्त होता है। विशेष कर बंगाले में सब विधवा स्त्रियों की एकादशी के दिन बड़ी दुर्दशा होती है। इस निर्दयी कसाई को लिखते समय कुछ भी मन में दया न आई, नहीं तो निर्जला का नाम सजला और पौष महीने की शुक्लपक्ष की एकादशी का नाम निर्जला रख देता तो भी कुछ अच्छा होता। परन्तु इस पोप को दया से क्या काम? **'कोई जीवो वा मरो पोप जी का पेट पूरा भरो।'**

गर्भवती वा सद्योविवाहिता स्त्री, लड़के वा युवा पुरुषों को तो कभी उपवास न करना चाहिये। परन्तु किसी को करना भी हो तो जिस दिन अजीर्ण हो क्षुधा न लगे, उस दिन शर्करावत् (शर्बत) वा दूध पीकर रहना चाहिये। जो भूख में नहीं खाते और विना भूख के भोजन करते हैं वे दोनों रोगसागर में गोते खा दुःख पाते हैं। इन प्रमादियों के कहने लिखने का प्रमाण कोई भी न करे।

अब गुरु शिष्य मन्त्रोपदेश और मतमतान्तर के चरित्रों का वर्त्तमान कहते हैं—

मूर्त्तिपूजक सम्प्रदायी लोग प्रश्न करते हैं कि वेद अनन्त हैं। ऋग्वेद की २१, यजुर्वेद की १०१, सामवेद की १००० और अथर्ववेद की ९ शाखा हैं। इन में से थोड़ी सी शाखा मिलती हैं शेष लोप हो गई हैं। उन्हीं में पूजा और तीर्थों का प्रमाण होगा। जो न होता तो पुराणों में कहां से आता? जब कार्य देख कर कारण का अनुमान होता है तब पुराणों को देखकर मूर्त्तिपूजा में क्या शंका है?

(उत्तर) जैसे शाखा जिस वृक्ष की होती है उस के सदृश हुआ करती है; विरुद्ध नहीं। चाहै शाखा छोटी बड़ी हों परन्तु उन में विरोध नहीं हो सकता। वैसे ही जितनी शाखा मिलती हैं जब इन में पाषाणादि मूर्त्ति और जल स्थल विशेष तीर्थों का प्रमाण नहीं मिलता तो उन लुप्त शाखाओं में भी नहीं था। और चार वेद पूर्ण मिलते हैं उन से विरुद्ध शाखा कभी नहीं हो सकतीं और जो विरुद्ध हैं उन को शाखा कोई भी सिद्ध नहीं कर सकता। जब यह बात है तो पुराण वेदों की शाखा नहीं किन्तु सम्प्रदायी लोगों ने परस्पर विरुद्धरूप ग्रन्थ बना रखे हैं।

वेदों को तुम परमेश्वरकृत मानते हो वा मनुष्यकृत? परमेश्वरकृत । जब

परमेश्वरकृत मानते हो तो 'आश्वलायनादि' ऋषि मुनियों के नाम प्रसिद्ध ग्रन्थों को वेद क्यों मानते हो? जैसे डाली और पत्तों के देखने से पीपल, बड़ और आम्र आदि वृक्षों की पहिचान होती है वैसे ही ऋषि मुनियों के किये वेदांग, चारों ब्राह्मण, अंग; उपांग और उपवेद आदि से वेदार्थ पहिचाना जाता है। इसलिये इन ग्रन्थों को शाखा माना है।

जो वेदों से विरुद्ध है उस का प्रमाण और अनुकूल का अप्रमाण नहीं हो सकता। जो तुम अदृष्ट शाखाओं में मूर्त्ति आदि के प्रमाण की कल्पना करोगे तो जब कोई ऐसा पक्ष करेगा कि लुप्त शाखाओं में वर्णाश्रम व्यवस्था उलटी अर्थात् अन्त्यज और शूद्र का नाम ब्राह्मणादि और ब्राह्मणादि का नाम शूद्र अन्त्यजादि, अगमनीयागमन, अकर्त्तव्य कर्त्तव्य, मिथ्याभाषणादि धर्म, सत्यभाषणादि अधर्म आदि लिखा होगा तो तुम उस को वही उत्तर दोगे जो कि हम ने दिया अर्थात् वेद और प्रसिद्ध शाखाओं में जैसा ब्राह्मणादि का नाम ब्राह्मणादि और शूद्रादि का नाम शूद्रादि लिखा है, वैसा ही अदृष्ट शाखाओं में भी मानना चाहिये नहीं तो वर्णाश्रम व्यवस्था आदि सब अन्यथा हो जायेंगे।

भला जैमिनि, व्यास और पतञ्जलि के समय पर्य्यन्त तो सब शाखा विद्यमान थीं वा नहीं? यदि थीं तो तुम कभी निषेध न कर सकोगे और जो कहो कि नहीं थीं तो फिर शाखाओं के होने का क्या प्रमाण है? देखो! जैमिनि ने मीमांसा में सब कर्मकाण्ड, पतञ्जलि मुनि ने योगशास्त्र में सब उपासनाकाण्ड और व्यासमुनि ने शारीरक सूत्रों में सब ज्ञानकाण्ड वेदानुकूल लिखा है। उन में पाषाणादि मूर्त्तिपूजा वा प्रयागादि तीर्थों का नाम तक भी नहीं लिखा। लिखें कहां से? जो कहीं वेदों में होता तो लिखे विना कभी न छोड़ते। इसलिये लुप्त शाखाओं में भी इन मूर्त्तिपूजादि का प्रमाण नहीं था। ये सब शाखा वेद नहीं हैं क्योंकि इनमें ईश्वरकृत वेदों के प्रतीक धर के व्याख्या और संसारी जनों के इतिहासादि लिखे हैं इसलिये ये वेद कभी नहीं हो सकते। वेदों में तो केवल मनुष्यों को विद्या का उपदेश किया है। किसी मनुष्य का नाममात्र भी नहीं। इसलिए मूर्त्तिपूजा का सर्वथा खण्डन है।

देखो! मूर्त्तिपूजा से श्रीरामचन्द्र, श्रीकृष्ण, नारायण और शिवादि की बड़ी निन्दा और उपहास होता है। सब कोई जानते हैं कि वे बड़े महाराजाधिराज और उनकी स्त्री सीता तथा रुक्मिणी, लक्ष्मी और पार्वती आदि महाराणियां थीं, परन्तु जब उन की मूर्त्तियां मन्दिर आदि में रख के पुजारी लोग उनके नाम से भीख मांगते हैं अर्थात् उन को भिखारी बनाते हैं कि आओ महाराज! राजा जी! सेठ! साहूकारो! दर्शन कीजिये, बैठिये, चरणामृत लीजिये, कुछ भेंट चढ़ाइये। महाराज! सीता-राम, कृष्ण-रुक्मिणी वा राधा-कृष्ण, लक्ष्मी-नारायण और महादेव-पार्वती जी को तीन दिन से बालभोग वा राजभोग अर्थात् जलपान वा खानपान भी नहीं मिला है। आज इन के पास कुछ भी नहीं है। सीता आदि को नथुनी आदि राणी जी वा सेठानी जी बनवा दीजिये। अन्न आदि भेजो तो राम-कृष्णादि को भोग लगावें। वस्त्र सब फट गये हैं। मन्दिर के कोने सब गिर पड़े हैं। ऊपर से चूता है और दुष्ट चोर जो कुछ था उसे उठा ले गये। कुछ ऊंदरों (चूहों) ने काट कूट डाले। देखिये? एक दिन ऊंदरों ने ऐसा अनर्थ किया कि इनकी आंख भी निकाल के भाग गये। अब हम चांदी की आंख न बना सके इसलिये कौड़ी की लगा दी है।

रामलीला और रासमण्डल भी करवाते हैं। सीताराम, राधाकृष्ण नाच रहे हैं।

राजा और महन्त आदि उन के सेवक आनन्द में बैठे हैं। मन्दिर में सीता-रामादि खड़े और पुजारी वा महन्त जी आसन अथवा गद्दी पर तकिया लगाये बैठते हैं। महागरमी में भी ताला लगा भीतर बन्ध कर देते हैं और आप सुन्दर वायु में पलंग बिछाकर सोते हैं। बहुत से पूजारी अपने नारायण को डब्बी में बन्ध कर ऊपर से कपड़े आदि बांध गले में लटका लेते हैं जैसे कि वानरी अपने बच्चे को गले में लटका लेती है वैसे पूजारियों के गले में भी लटकते हैं। जब कोई मूर्त्ति को तोड़ता है तब हाय-हाय कर छाती पीट बकते हैं कि सीता-राम जी राधा-कृष्ण जी और शिव-पार्वती को दुष्टों ने तोड़ डाला! अब दूसरी मूर्त्ति मंगवा कर जो अच्छे शिल्पी ने संगमरमर की बनाई हो स्थापन कर पूजनी चाहिये।

नारायण को घी के विना भोग नहीं लगता। बहुत नहीं तो थोड़ा सा अवश्य भेज देना। इत्यादि बातें इन पर ठहराते हैं। और रासमण्डल वा रामलीला के अन्त में सीताराम वा राधाकृष्ण से भीख मंगवाते हैं। जहां मेला ठेला होता है वह छोकरे पर मुकुट धर कन्हैया बना मार्ग में बैठाकर भीख मंगवाते हैं।

इत्यादि बातों को आप लोग विचार लीजिये कि कितने बड़े शोक की बात है! भला कहो तो सीतारामादि ऐसे दरिद्र और भिक्षुक थे? यह उन का उपहास और निन्दा नहीं तो क्या है? इस से बड़ी अपने माननीय पुरुषों की निन्दा होती है। भला जिस समय ये विद्यमान थे उस समय सीता, रुक्मिणी, लक्ष्मी और पार्वती को सड़क पर वा किसी मकान में खड़ी कर पूजारी कहते कि आओ इन का दर्शन करो और कुछ भेंट पूजा धरो तो सीता-रामादि इन मूर्खों के कहने से ऐसा काम कभी न करते और न करने देते। जो कोई ऐसा उपहास उन का करता है उस को विना दण्ड दिये कभी छोड़ते? हां जब उन्हों से दण्ड न पाया तो इन के कर्मों ने पूजारियों को बहुत सी मूर्त्तिविरोधियों से प्रसादी दिला दी और अब भी मिलती है और जब तक इस कुकर्म को न छोड़ेंगे तब तक मिलेगी।

इस में क्या सन्देह है कि जो आर्य्यावर्त्त की प्रतिदिन महाहानि पाषाणादि मूर्त्तिपूजकों का पराजय इन्हीं कर्मों से होता है, क्योंकि पाप का फल दुःख है। इन्हीं पाषाणादि मूर्त्तियों के विश्वास से बहुत सी हानि हो गई। जो न छोड़ेंगे तो प्रतिदिन अधिक-अधिक होती जायगी, इन में से वाममार्गी बड़े भारी अपराधी हैं। जब वे चेला करते हैं तब साधारण को—

दं दुर्गायै नमः। भं भैरवाय नमः। ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे॥

इत्यादि मन्त्रों का उपदेश कर देते हैं और बंगाले में विशेष करके एकाक्षरी मन्त्रोपदेश करते हैं। जैसा—

ह्रीं, श्रीं, क्लीं॥

इत्यादि और धनाढ्यों का पूर्णाभिषेक करते हैं। ऐसे दश महाविद्याओं के मन्त्र—

ह्रां ह्रीं ह्रूं बगलामुख्यै फट् स्वाहा॥

कहीं-कहीं—

हूं फट् स्वाहा॥

और मारण, मोहन, उच्चाटन, विद्वेषण, वशीकरण आदि प्रयोग करते हैं।

सो मन्त्र से तो कुछ भी नहीं होता किन्तु क्रिया से सब कुछ करते हैं। जब किसी को मारने का प्रयोग करते हैं तब इधर कराने वाले से धन ले के आटे वा मिट्टी का पूतला जिस को मारना चाहते हैं उस का बना लेते हैं! उस की छाती, नाभि, कण्ठ में छुरे प्रवेश कर देते हैं। आंख, हाथ, पग में कीलें ठोकते हैं। उस के ऊपर भैरव वा दुर्गा की मूर्त्ति बना हाथ में त्रिशूल दे उस के हृदय पर लगाते हैं। एक वेदी बनाकर मांस आदि का होम करने लगते हैं और उधर दूत आदि भेज के उस को विष आदि से मारने का उपाय करते हैं जो अपने पुरश्चरण के बीच में उस को मार डाला तो अपने को भैरव देवी की सिद्धि वाले बतलाते हैं।

''**भैरवो भूतनाथश्च**'' इत्यादि का पाठ करते हैं।

मारय-मारय, उच्चाटय-उच्चाटय, विद्वेषय-विद्वेषय, छिन्धि-छिन्धि, भिन्धि-भिन्धि, वशीकुरु-वशीकुरु, खादय-खादय, भक्षय-भक्षय, त्रोटय-त्रोटय, नाशय-नाशय, मम शत्रून् वशीकुरु-वशीकुरु, हुं फट् स्वाहा॥

इत्यादि मन्त्र जपते, मद्य मांसादि यथेष्ट खाते-पीते, भृकुटी के बीच में सिन्दूर रेखा देते, कभी-कभी काली आदि के लिये किसी आदमी को पकड़ मार होम कर कुछ-कुछ उस का मांस खाते भी हैं। जो कोई भैरवीचक्र में जावे, मद्य मांस न पीवे, न खावे तो उस को मार होम कर देते हैं। उन में से जो अघोरी होता है वह मृत मनुष्य का भी मांस खाता है। अजरी बजरी करने वाले विष्ठा मूत्र भी खाते-पीते हैं।

एक चोलीमार्ग और बीजमार्गी भी होते हैं। चोली मार्गवाले एक गुप्त स्थान वा भूमि में एक स्थान बनाते हैं । वहां सब की स्त्रियां, पुरुष, लड़का, लड़की, बहिन, माता, पुत्रवधू आदि सब इकट्ठे हो सब लोग मिलमिला कर मांस खाते, मद्य पीते, एक स्त्री को नंगी कर उस के गुप्त इन्द्रिय की पूजा सब पुरुष करते हैं और उस का नाम दुर्गादेवी धरते हैं। एक पुरुष को नंगा कर उस के गुप्त इन्द्रिय की पूजा सब स्त्रियां करती हैं। जब मद्य पी-पी के उन्मत्त हो जाते हैं तब सब स्त्रियों के छाती के वस्त्र जिसको चोली कहते हैं एक बड़ी मिट्टी की नांद में सब वस्त्र मिलाकर रखके एक-एक पुरुष उस में हाथ डाल के जिस के हाथ में जिस का वस्त्र आवे वह माता, बहिन, कन्या और पुत्रवधू क्यों न हो उस समय के लिये वह उस की स्त्री हो जाती है। आपस में कुकर्म करने और बहुत नशा चढ़ने से जूते आदि से लड़ते भिड़ते हैं। जब प्रातःकाल कुछ अन्धेरे में अपने-अपने घर को चले जाते हैं तब माता माता, कन्या कन्या, बहिन बहिन और पुत्रवधू पुत्रवधू हो जाती हैं। और बीजमार्गी स्त्री पुरुष के समागम कर जल में वीर्य डाल मिलाकर पीते हैं। ये पामर ऐसे कर्मों को मुक्ति के साधन मानते हैं। विद्या विचार सज्जनतादि रहित होते हैं।

(प्रश्न) शैव मत वाले तो अच्छे होते हैं?

(उत्तर) अच्छे कहां से होते हैं? **'जैसा प्रेतनाथ वैसा भूतनाथ'** जैसे वाममार्गी मन्त्रोपदेशादि से उन का धन हरते हैं वैसे शैव भी **'ओं नमः शिवाय'** इत्यादि पञ्चाक्षरादि मन्त्रों का उपदेश करते, रुद्राक्ष भस्म धारण करते, मट्टी के और पाषाणादि के लिङ्ग बनाकर पूजते हैं और **हर-हर बं बं** और बकरे के शब्द के समान **बड़ बड़ बड़** मुख से शब्द करते हैं। उस का कारण यह कहते हैं कि

ताली बजाने और **बं-बं** शब्द बोलने से पार्वती प्रसन्न और महादेव अप्रसन्न होता है। क्योंकि जब भस्मासुर के आगे से महादेव भागे थे तब **बं-बं** और ठट्ठे की तालियां बजी थीं और गाल बजाने से पार्वती अप्रसन्न और महादेव प्रसन्न होते हैं क्योंकि पार्वती के पिता दक्षप्रजापति का शिर काट आगी में डाल उस के धड़ पर बकरे का शिर लगा दिया था। उसी की नकल बकरे के शब्द के तुल्य गाल बजाना मानते हैं। शिवरात्री प्रदोष का व्रत करते हैं इत्यादि से मुक्ति मानते हैं, इसलिये जैसे वाममार्गी भ्रान्त हैं वैसे शैव भी। इन में विशेषकर कनफटे, नाथ, गिरी, पुरी, वन, आरण्य, पर्वत और सागर तथा गृहस्थ भी शैव होते हैं। कोई-कोई **'दोनों घोड़ों पर चढ़ते हैं'** अर्थात् वाम और शैव दोनों मतों को मानते हैं और कितने ही वैष्णव भी रहते हैं। उनका—

अन्तःशाक्ता बहिश्शैवा सभामध्ये च वैष्णवाः।
नानारूपधराः कौला विचरन्तीह महीतले॥ यह तन्त्र का श्लोक है।

भीतर शाक्त अर्थात् वाममार्गी बाहर शैव अर्थात् रुद्राक्ष, भस्म धारण करते हैं और सभा में वैष्णव कहाते हैं कि हम विष्णु के उपासक हैं। ऐसे नाना प्रकार के रूप धारण करके वाममार्गी लोग पृथिवी में विचरते हैं।

(प्रश्न) वैष्णव तो अच्छे हैं?

(उत्तर) क्या धूड़ अच्छे हैं। जैसे वे वैसे ये हैं। देख लो वैष्णवों की लीला। अपने को विष्णु का दास मानते हैं। उन में से श्रीवैष्णव जो कि चक्राङ्कित होते हैं वे अपने को सर्वोपरि मानते हैं सो कुछ भी नहीं हैं।

(प्रश्न) क्यों! कुछ भी नहीं? सब कुछ हैं। देखो! ललाट में नारायण के चरणारविन्द के सदृश तिलक और बीच में पीली रेखा श्री होती है, इसलिये हम श्रीवैष्णव कहाते हैं। एक नारायण को छोड़ दूसरे किसी को नहीं मानते। महादेव के लिङ्ग का दर्शन भी नहीं करते क्योंकि हमारे ललाट में श्री विराजमान है वह लज्जित होती है। आलमन्दारादि स्तोत्रों के पाठ करते हैं। मांस नहीं खाते न मद्य पीते हैं। फिर अच्छे क्यों नहीं?

(उत्तर) इस तुम्हारे तिलक को **हरिपदाकृति** इस पीली रेखा को **श्री** मानना व्यर्थ है क्योंकि यह तो तुम्हारे हाथ की कारीगरी और ललाट का चित्र है जैसा हाथी का ललाट चित्र-विचित्र करते हैं तुम्हारे ललाट में विष्णु के पद का चिह्न कहां से आया? क्या कोई वैकुण्ठ में जाकर विष्णु के पग का चिह्न ललाट में करा आया है?

(विवेकी) और श्री जड़ है वा चेतन? **(वैष्णव)** चेतन है।

(विवेकी) तो यह रेखा जड़ होने से श्री नहीं है। हम पूछते हैं कि श्री बनाई हुई है वा विना बनाई? जो विना बनाई है तो यह श्री नहीं क्योंकि इस को तो तुम नित्य अपने हाथ से बनाते हो फिर श्री नहीं हो सकती। जो तुम्हारे ललाट में श्री हो तो कितने ही वैष्णवों का बुरा मुख अर्थात् शोभा रहित क्यों दीखता है? ललाट में श्री और घर-घर भीख मांगते और सदावर्त्त लेकर पेट भरते क्यों फिरते हो? यह बात स्त्रीड़ी और निर्लज्जों की है कि कपाल में श्री और महादरिद्रों के काम करते हैं।

इनमें एक 'परिकाल' नामक वैष्णव भक्त था। वह चोरी डाका मार, छल कपट कर, पराया धन हर, वैष्णवों के पास धर, प्रसन्न होता था। एक समय उस

को चोरी में पदार्थ कोई नहीं मिला कि जिस को लूटे। व्याकुल होकर फिरता था। नारायण ने समझा कि हमारा भक्त दुःख पाता है। सेठ जी का स्वरूप धर अंगूठी आदि आभूषण पहिन रथ में बैठ के सामने आये। तब तो परिकाल रथ के पास गया। सेठ से कहा सब वस्तु शीघ्र उतार दो नहीं तो मैं मार डालूंगा। उतारते-उतारते अंगूठी उतारने में देर लगी। परिकाल ने नारायण की अंगुली काट अंगूठी ले ली। नारायण ने बड़े प्रसन्न हो चतुर्भुज शरीर बना दर्शन दिया। कहा कि तू मेरा बड़ा प्रिय भक्त है क्योंकि सब धन मार लूट चोरी कर वैष्णवों की सेवा करता है इसलिये तू धन्य है। फिर उस ने जाकर वैष्णवों के पास सब गहने धर दिये।

एक समय परिकाल को कोई साहूकार नौकर कर जहाज में बिठा के देशान्तर में ले गया। वहां से जहाज में सुपारी भरी। परिकाल ने एक सुपारी तोड़ आधा टुकड़ा कर बनिये से कहा यह मेरी आधी सुपारी जहाज में धर दो और लिख दो कि जहाज में आधी सुपारी परिकाल की है। बनिये ने कहा कि चाहे तुम हजार सुपारी ले लेना। परिकाल ने कहा—नहीं, हम अधर्मी नहीं हैं जो हम झूठ मूठ लें। हम को तो आधी चाहिये। बनिया विचारा भोला भाला था उसने लिख दिया। जब अपने देश में बन्दर पर जहाज आया और सुपारी उतारने की तैयारी हुई तब परिकाल ने कहा हमारी आधी सुपारी दे दो। बनिया वही सुपारी देने लगा। तब परिकाल झगड़ने लगा मेरी तो जहाज में आधी सुपारी है। आधा बांट लूंगा। राजपुरुषों तक झगड़ा गया। परिकाल ने बनिये का लेख दिखलाया कि इस ने आधी सुपारी देनी लिखी है। बनिया बहुत सा कहता रहा परन्तु उस ने न माना। आधी सुपारी लेकर वैष्णवों के अर्पण कर दी। तब तो वैष्णव बड़े प्रसन्न हुए। अब तक उस डाकू चोर परिकाल की मूर्त्ति मन्दिर में रखते हैं। यह कथा भक्तमाल में लिखी है। बुद्धिमान् देख लें कि वैष्णव, उन के सेवक और नारायण तीनों चोरमण्डली हैं वा नहीं?

यद्यपि मतमतान्तरों में कोई थोड़ा अच्छा भी होता है तथापि उस मत में रह कर सर्वथा अच्छा नहीं हो सकता। अब जैसा वैष्णवों में फूट-टूट भिन्न-भिन्न तिलक कण्ठी धारण करते हैं, रामानन्दी बगल में गोपीचन्दन बीच में लाल; नीमावत दोनों पतली रेखा बीच में काला विन्दु, माधव काली रेखा और गौड़ बङ्गाली कटारी के तुल्य और रामप्रसादवाले दोनों चांदला रेखा के बीच में एक सफेद गोल टीका इत्यादि इन का कथन विलक्षण-विलक्षण है। रामानन्दी लाल रेखा को लक्ष्मी का चिह्न और नारायण के हृदय में, श्री कृष्णचन्द्र जी के हृदय में राधा विराजमान है; इत्यादि कथन करते हैं।

एक कथा भक्तमाल में लिखी है। कोई एक मनुष्य वृक्ष के नीचे सोता था। सोता-सोता ही मर गया। ऊपर से एक काक ने विष्ठा कर दी। वह ललाट पर तिलकाकार हो गई थी। वहां यम के दूत उस को लेने आये। इतने में विष्णु के दूत भी पहुंच गये। दोनों विवाद करते थे कि यह हमारे स्वामी की आज्ञा है; हम यमलोक में ले जायेंगे। विष्णु के दूतों ने कहा कि हमारे स्वामी की आज्ञा है वैकुण्ठ में ले जाने की। देखो! इस के ललाट में वैष्णवी तिलक है। तुम कैसे ले जाओगे? तब तो यम के दूत चुप होकर चले गये। विष्णु के दूत सुख से उस को वैकुण्ठ में ले गये। नारायण ने उस को वैकुण्ठ में रक्खा।

देखो! जब अकस्मात् तिलक बन जाने का ऐसा माहात्म्य है तो जो अपनी प्रीति और हाथ से तिलक करते हैं वे नरक से छूट वैकुण्ठ में जावें तो इस में

क्या आश्चर्य है ?

हम पूछते हैं कि जब छोटे से तिलक के करने से वैकुण्ठ में जावें तो सब मुख के ऊपर लेपन करने वा कालामुख करने वा शरीर पर लेपन करने से वैकुण्ठ से भी आगे सिधार जाते हैं वा नहीं? इस से ये बातें सब व्यर्थ हैं। अब इन में बहुत से खाखी लकड़े की लङ्गोली लगा धूनी तापते, जटा बढ़ाते, सिद्ध का वेश कर लेते हैं। बगुले के समान ध्यानावस्थित होते हैं। गांजा, भांग चरस के दम लगाते; लाल नेत्र कर रखते; सब से चुटकी-चुटकी अन्न, पिसान, कौड़ी, पैसे मांगते, गृहस्थों के लड़कों को बहकाकर चेले बना लेते हैं। बहुत करके मजूर लोग उन में होते हैं। कोई विद्या को पढ़ता हो तो उसको पढ़ने नहीं देते किन्तु कहते हैं कि—

पठितव्यं तदपि मर्त्तव्यं दन्तकटाकटेति किं कर्त्तव्यम्॥

सन्तों को विद्या पढ़ने से क्या काम क्योंकि विद्या पढ़ने वाले भी मर जाते हैं फिर दन्त कटाकट क्यों करना? साधुओं को चार धाम फिर आना, सन्तों की सेवा करनी, राम जी का भजन करना।

जो किसी ने मूर्ख अविद्या की मूर्त्ति न देखी हो तो खाखी जी का दर्शन कर आवें। उन के पास जो कोई जाता है उन को बच्चा बच्ची कहते हैं चाहें वे खाखी जी के बाप माँ के समान क्यों न हों। जैसे खाखी जी हैं वैसे ही रूंखड़, सूंखड़, गोदड़िये और जमात वाले सुतरेसाई और अकाली, कानफटे, जोगी, औघड़, आदि सब एक से हैं।

एक खाखी का चेला **'श्रीगणेशाय नमः'** घोखता-घोखता कुवें पर जल भरने को गया। वहां पण्डित बैठा था। वह उस को **'स्त्रीगने साजनमें'** घोखते देखकर बोला, अरे साधु! अशुद्ध घोखता है **'श्रीगणेशाय नमः'** ऐसा घोख। उस ने झट लोटा भर गुरु जी के पास जा कहा कि ए बम्मन मेरे घोखने को असुद्ध कहता है। ऐसा सुन कर झट खाखी जी उठा, कूप पर गया और पण्डित से कहा—तू मेरे चेले को बहकाता है? तूं गुरु की लंडी क्या पढ़ा है? देख तूं एक प्रकार का पाठ जानता है हम तीन प्रकार का जानते हैं। **'स्त्रीगनेसाजन्नमें' 'स्त्रीगनेसा यन्नमें' 'श्रीगनेसाय नमें'।**

(पण्डित) सुनो साधु जी! विद्या की बात बहुत कठिन है। विना पढ़े नहीं आती।

(खाखी) चल बे, सब विद्वान् को हम ने रगड़ मारे, गांजे भांग में घोट एकदम सब उड़ा दिये। सन्तों का घर बड़ा है। तू बाबूडा क्या जाने?

(पण्डित) देखो! जो तुम ने विद्या पढ़ी होती तो ऐसे अपशब्द क्यों बोलते? सब प्रकार का तुम को ज्ञान होता।

(खाखी) अबे तू हमारा गुरु बनता है? तेरा उपदेश हम नहीं सुनते।

(पण्डित) सुनो कहां से? बुद्धि ही नहीं है। उपदेश सुनने समझने के लिये विद्या चाहिये।

(खाखी) जो सब वेद शास्त्र पढ़े, सन्तों को न माने तो जानो कि वह कुछ भी नहीं पढ़ा।

(पण्डित) हां! हम सन्तों की सेवा करते हैं परन्तु तुम्हारे से हुर्दङ्गों की नहीं करते, क्योंकि सन्त, सज्जन, विद्वान्, धार्मिक, परोपकारी पुरुषों को कहते हैं।

(खाखी) देख! हम रात दिन नंगे रहते, धूनी तापते, गांजा चरस के सैकड़ों

दम लगाते, तीन-तीन लोटा भांग पीते, गांजे, भांग, धतूरा की पत्ती की भाजी (शाक) बना खाते, संखिया और अफीम भी चट निगल जाते, नशा में गर्क रात दिन बेग़म रहते, दुनिया को कुछ नहीं समझते, भीख मांगकर टिक्कड़ बना खाते, रात भर ऐसी खांसी उठती जो पास में सोवे उस को भी नींद कभी न आवे, इत्यादि सिद्धियां और साधूपन हम में हैं, फिर तू हमारी निन्दा क्यों करता है? चेत बाबूड़े! जो हम को दिक्क करेगा हम तुम को भस्म कर डालेंगे।

(पण्डित) ये सब लक्षण असाधु मूर्ख और गवर्गण्डों के हैं; साधुओं के नहीं! सुनो! **'साध्नोति पराणि धर्मकार्याणि स साधुः'** जो धर्मयुक्त उत्तम काम करे, सदा परोपकार में प्रवृत्त हो, कोई दुर्गुण जिसमें न हो, विद्वान्, सत्योपदेश से सब का उपकार करे उस को 'साधु' कहते हैं।

(खाखी) चल बे, तू साधू के कर्म क्या जाने? सन्तों का घर बड़ा है। किसी सन्त से अटकना नहीं, नहीं तो देख एक चीमटा उठाकर मारेगा, कपाल फुड़वा लेगा।

(पण्डित) अच्छा खाखी! जाओ अपने आसन पर, हम से बहुत गुस्से मत हो। जानते हो राज्य कैसा है? किसी को मारोगे तो पकड़े जाओगे, कारावास भोगोगे, बेंत खाओगे वा कोई तुम को भी मार बैठेगा फिर क्या करोगे? यह साधु का लक्षण नहीं।

(खाखी) चल बे चेले! किस राक्षस का मुख दिखलाया। (पण्डित) तुम ने कभी किसी महात्मा का संग नहीं किया है। नहीं तो ऐसे जड़, मूर्ख नहीं रहते।

(खाखी) हम आप ही महात्मा हैं। हम को किसी दूसरे की गर्ज नहीं।

(पण्डित) जिन के भाग्य नष्ट होते हैं उन की तुम्हारी सी बुद्धि और अभिमान होता है। खाखी चला गया आसन पर और पण्डित घर को गये। जब सन्ध्या आर्ती हो गई तब उस खाखी को बुड्ढा समझ बहुत से खाखी 'डण्डोत-डण्डोत' कहते साष्टांग करके बैठे। उस खाखी ने पूछा अबे रामदासिया! तू क्या पढ़ा है?

(रामदास) महाराज! मैंने **'वेस्नुसहसरनाम'** पढ़ा है। अबे गोविन्ददासिये! तू क्या पढ़ा है? **(गोविन्ददास)** मैं **'रामसतबराज'** पढ़ा हूं; अमुक खाखी जी के पास से। तब रामदास बोला कि महाराज आप क्या पढ़े हैं?

(खाखी) हम गीता पढ़े हैं। **(रामदास)** किसके पास?

(खाखी) चल बे छोकरे! हम किसी को गुरु नहीं करते। देख! हम 'परागराज' में रहते थे हम को अक्खर नहीं आता था। जब किसी लम्बी धोती वाले पण्डित को देखता था तब गीता के गोटके में पूछता था। कि कलङ्गीवाले अक्खर का क्या नाम है? ऐसे पूछता-पूछता अठारा अध्याय गीता रगड़ मारी। गुरु एक भी नहीं किया। भला ऐसे विद्या के शत्रुओं को अविद्या घर करके ठहरे नहीं तो कहां जाय?

ये लोग विना नशा, प्रमाद, लड़ना, खाना, सोना, झांझ पीटना, घण्टा घड़ियाल शंख बजाना, धूनी चिता रखनी, नहाना, धोना, सब दिशाओं में व्यर्थ घमूते फिरने के अन्य कुछ भी अच्छा काम नहीं करते। चाहे कोई पत्थर को भी पिघला लेवे, परन्तु इन खाखियों के आत्माओं को बोध कराना कठिन है क्योंकि बहुधा वे शूद्रवर्ण मजूर, किसान, कहार आदि अपनी मजूरी छोड़ केवल खाख रमा के वैरागी खाखी आदि हो जाते हैं। उन को विद्या वा सत्संग आदि का माहात्म्य नहीं

जान पड़ सकता।

इन में से नाथों का मन्त्र **'नमः शिवाय'**। खाखियों का **'नृसिंहाय नमः'**। रामावतों का **'श्रीरामचन्द्राय नमः।'** अथवा **'सीतारामाभ्यां नमः'**। कृष्णोपासकों का **'श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः।' 'नमो भगवते वासुदेवाय'** और बङ्गालियों का **'गोविन्दाय नमः'**। इन मन्त्रों को कान में पढ़ने मात्र से शिष्य कर लेते हैं और ऐसी-ऐसी शिक्षा करते हैं कि बच्चे! तूंबे का मन्त्र पढ़ ले—

जल पवितर सथल पवितर और पवितर कुआ।
शिव कहे सुन पार्वती तूंबा पवितर हुआ॥

भला ऐसे की योग्यता साधु वा विद्वान् होने अथवा जगत् के उपकार करने की कभी हो सकती है? खाखी रात दिन लक्कड़, छाने (जंगली कण्डे) जलाया करते हैं। एक महीने में कई रुपये की लकड़ी फूंक देते हैं। जो एक महीने की लकड़ी के मूल्य से कम्बलादि वस्त्र ले लें तो शतांश धन से आनन्द में रहैं। उन को इतनी बुद्धि कहां से आवे? और अपना नाम उसी धूनी में तपने ही से तपस्वी धर रखा है। जो इस प्रकार तपस्वी हो सकें तो जंगली मनुष्य इन से भी अधिक तपस्वी हो जावें। जो जटा बढ़ाने, राख लगाने, तिलक करने से तपस्वी हो जाय तो सब कोई कर सके। ये ऊपर के त्यागस्वरूप और भीतर के महासंग्रही होते हैं।

(प्रश्न) कबीरपन्थी तो अच्छे हैं?

(उत्तर) नहीं।

(प्रश्न) क्यों अच्छे नहीं? पाषाणादि मूर्त्तिपूजा का खण्डन करते हैं। कबीर साहब फूलों से उत्पन्न हुए और अन्त में भी फूल हो गये। ब्रह्मा, विष्णु, महादेव का जन्म जब नहीं था तब भी कबीर साहब थे। बड़े सिद्ध; ऐसे कि जिस बात को वेद पुराण भी नहीं जान सकता उस को कबीर जानते हैं। सच्चा रास्ता है सो कबीर ही ने दिखलाया है। इनका मन्त्र 'सत्यनाम कबीर' आदि है।

(उत्तर) पाषाणादि को छोड़ पलङ्ग, गद्दी, तकिये, खड़ाऊं, ज्योति अर्थात् दीप आदि का पूजना पाषाणमूर्त्ति से न्यून नहीं। क्या कबीर साहब भुनुगा था वा कलियां था जो फूलों से उत्पन्न हुआ? और अन्त में फूल हो गया?

यहां जो बात सुनी जाती है वही सच्ची होगी कि कोई जुलाहा काशी में रहता था। उसके लड़के बालक नहीं थे। एक समय थोड़ी सी रात्री थी। एक गली में चला जाता था तो देखा सड़क के किनारे में एक टोकनी में फूलों के बीच में उसी रात का जन्मा बालक था। वह उस को उठा ले गया; अपनी स्त्री को दिया; उस ने पालन किया। जब वह बड़ा हुआ तब जुलाहे का काम करता था। किसी पण्डित के पास संस्कृत पढ़ने के लिये गया। उस ने उस का अपमान किया। कहा कि हम जुलाहे को नहीं पढ़ाते। इसी प्रकार कई पण्डितों के पास फिरा परन्तु किसी ने न पढ़ाया। तब ऊटपटांग भाषा बनाकर जुलाहे आदि नीच लोगों को समझाने लगा। तंबूरे लेकर गाता था; भजन बनाता था। विशेष पण्डित, शास्त्र, वेदों की निन्दा किया करता था। कुछ मूर्ख लोग उस के जाल में फंस गये। जब मर गया तब लोगों ने उस को सिद्ध बना लिया। जो-जो उसने जीते जी बनाया था उस को उस के चेले पढ़ते रहे। कान को मूंद के जो शब्द सुना जाता है उस को अनहद शब्दसिद्धान्त ठहराया। मन की वृत्ति को 'सुरति' कहते हैं। उस को उस शब्द सुनने में लगाना

उसी को सन्त और परमेश्वर का ध्यान बतलाते हैं। वहां काल नहीं पहुँचता। बर्छी के समान तिलक और चन्दनादि लकड़े की कण्ठी बांधते हैं। भला विचार देखो कि इस में आत्मा की उन्नति और ज्ञान क्या बढ़ सकता है? यह केवल लड़कों के खेल के समान लीला है।

(प्रश्न) पंजाब देश में नानक जी ने एक मार्ग चलाया है। क्योंकि वे भी मूर्त्ति का खण्डन करते थे। मुसलमान होने से बचाये। वे साधु भी नहीं हुए किन्तु गृहस्थ बने रहे। देखो! उन्होंने यह मन्त्र उपदेश किया है इसी से विदित होता है कि उन का आशय अच्छा था—

ओं सत्यनाम कर्त्ता पुरुष निर्भो निर्वैर अकालमूर्त्त अजोनि सहभं गुरु प्रसाद जप आदिसच जुगादि सच है भी सच नानक होसी भी सच॥

(ओ३म्) जिस का सत्य नाम है वह कर्त्ता पुरुष भय और वैररहित अकाल मूर्त्ति जो काल में और जोनि में नहीं आता; प्रकाशमान है उसी का जप गुरु की कृपा से कर। वह परमात्मा आदि में सच था; जुगों की आदि में सच; वर्त्तमान में सच; और होगा भी सच ।

(उत्तर) नानक जी का आशय तो अच्छा था परन्तु विद्या कुछ भी नहीं थी। हां! भाषा उस देश की जो कि ग्रामों की है उसे जानते थे। वेदादि शास्त्र और संस्कृत कुछ भी नहीं जानते थे। जो जानते होते तो 'निर्भय' शब्द को 'निर्भो' क्यों लिखते? और इस का दृष्टान्त उन का बनाया संस्कृती स्तोत्र है। चाहते थे कि मैं संस्कृत में भी 'पग अड़ाऊं' परन्तु विना पढ़े संस्कृत कैसे आ सकता है? हां उन ग्रामीणों के सामने कि जिन्होंने संस्कृत कभी सुना भी नहीं था 'संस्कृती' बना कर संस्कृत के भी पण्डित बन गये होंगे। यह बात अपने मान प्रतिष्ठा और अपनी प्रख्याति की इच्छा के बिना कभी न करते। उन को अपनी प्रतिष्ठा की इच्छा अवश्य थी। नहीं तो जैसी भाषा जानते थे कहते रहते और यह भी कह देते कि मैं संस्कृत नहीं पढ़ा। जब कुछ अभिमान था तो मान प्रतिष्ठा के लिये कुछ दम्भ भी किया होगा। इसीलिये उन के ग्रन्थ में जहां तहां वेदों की निन्दा और स्तुति भी है; क्योंकि जो ऐसा न करते तो उन से भी कोई वेद का अर्थ पूछता, जब न आता तब प्रतिष्ठा नष्ट होती। इसीलिये पहले ही अपने शिष्यों के सामने कहीं-कहीं वेदों के विरुद्ध बोलते थे और कहीं-कहीं वेद के लिये अच्छा भी कहा है। क्योंकि जो कहीं अच्छा न कहते तो लोग उन को नास्तिक बनाते। जैसे—

वेद पढ़त ब्रह्मा मरे चारों वेद कहानि ।
सन्त कि महिमा वेद न जानी॥
ब्रह्मज्ञानी आप परमेश्वर॥

क्या वेद पढ़ने वाले मर गये और नानक जी आदि अपने को अमर समझते थे। क्या वे नहीं मर गये? वेद तो सब विद्याओं का भण्डार है परन्तु जो चारों वेदों को कहानी कहे उस की सब बातें कहानी हैं। जो मूर्खों का नाम सन्त होता है वे विचारे वेदों की महिमा कभी नहीं जान सकते। जो नानक जी वेदों ही का मान करते तो उन का सम्प्रदाय न चलता, न वे गुरु बन सकते थे क्योंकि संस्कृत विद्या तो पढ़े ही नहीं थे तो दूसरे को पढ़ा कर शिष्य कैसे बना सकते थे?

यह सच है कि जिस समय नानक जी पंजाब में हुए थे उस समय पंजाब संस्कृत विद्या से सर्वथा रहित मुसलमानों से पीड़ित था। उस समय उन्होंने कुछ

लोगों को बचाया। नानक जी के सामने कुछ उन का सम्प्रदाय वा बहुत से शिष्य नहीं हुए थे। क्योंकि अविद्वानों में यह चाल है कि मरे पीछे उन को सिद्ध बना लेते हैं, पश्चात् बहुत सा माहात्म्य करके ईश्वर के समान मान लेते हैं।

हां! नानक जी बड़े धनाढ्य और रईस भी नहीं थे परन्तु उन के चेलों ने 'नानकचन्द्रोदय' और 'जन्मशाखी' आदि में बड़े सिद्ध और बड़े-बड़े ऐश्वर्य वाले थे; लिखा है। नानक जी ब्रह्मा आदि से मिले; बड़ी बातचीत की, सब ने इन का मान्य किया। नानक जी के विवाह में बहुत से घोड़े, रथ, हाथी, सोने, चांदी, मोती, पन्ना, आदि रत्नों से सजे हुए और अमूल्य रत्नों का पारावार न था; लिखा है। भला ये गपोड़े नहीं तो क्या हैं? इस में इनके चेलों का दोष है, नानक जी का नहीं।

दूसरा जो उन के पीछे उनके लड़के से उदासी चले। और रामदास आदि से निर्मले। कितने ही गद्दीवालों ने भाषा बनाकर ग्रन्थ में रक्खी है। अर्थात् इन का गुरु गोविन्दसिंह जी दशमा हुआ। उन के पीछे उस ग्रन्थ में किसी की भाषा नहीं मिलाई गई किन्तु वहां तक के जितने छोटे-छोटे पुस्तक थे उन सब को इकट्ठे करके जिल्द बंधवा दी। इन लोगों ने भी नानक जी के पीछे बहुत सी भाषा बनाई। कितनों ही ने नाना प्रकार की पुराणों की मिथ्या कथा के तुल्य बना दिये। परन्तु ब्रह्मज्ञानी आप परमेश्वर बन के उस पर कर्म उपासना छोड़कर इन के शिष्य झुकते आये इस ने बहुत बिगाड़ कर दिया। नहीं, जो नानक जी ने कुछ भक्ति विशेष ईश्वर की लिखी थी उसे करते आते तो अच्छा था। अब उदासी कहते हैं हम बड़े, निर्मले कहते हैं हम बड़े, अकाली तथा सूतरहसाई कहते हैं कि सर्वोपरि हम हैं।

इन में गोविन्दसिंह जी शूरवीर हुए। जो मुसलमानों ने उनके पुरुषाओं को बहुत सा दुःख दिया था। उन से वैर लेना चाहते थे परन्तु इन के पास कुछ सामग्री न थी और इधर मुसलमानों की बादशाही प्रज्वलित हो रही थी। इन्होंने एक पुरश्चरण करवाया। प्रसिद्धि की कि मुझ को देवी ने वर और खड्ग दिया है कि तुम मुसलमानों से लड़ो; तुम्हारा विजय होगा। बहुत से लोग उन के साथी हो गये और उन्होंने; जैसे वाममार्गियों ने 'पञ्च मकार' चक्रांकितों ने 'पञ्च संस्कार' चलाये थे वैसे 'पञ्च ककार' चलाये। अर्थात् इनके पञ्च ककार युद्ध में उपयोगी थे। एक 'केश' अर्थात् जिस के रखने से लड़ाई में लकड़ी और तलवार से कुछ बचावट हो। दूसरा 'कंगण' जो शिर के ऊपर पगड़ी में अकाली लोग रखते हैं और हाथ में 'कड़ा' जिस से हाथ और शिर बच सकें। तीसरा 'काछ' अर्थात् जानु के ऊपर एक जांघिया कि जो दौड़ने और कूदने में अच्छा होता है बहुत करके अखाड़मल्ल और नट भी इस को धारण इसीलिये करते हैं कि जिस से शरीर का मर्मस्थान बचा रहै और अटकाव न हो। चौथा 'कंगा' कि जिस से केश सुधरते हैं। पांचवां 'काचू' कि जिस से शत्रु से भेंट भड़क्का होने से लड़ाई में काम आवे। इसीलिये यह रीति गोविन्दसिंह जी ने अपनी बुद्धिमत्ता से उस समय के लिये की थी। अब इस समय में उन का रखना कुछ उपयोगी नहीं है। परन्तु अब जो युद्ध के प्रयोजन के लिये बातें कर्त्तव्य थीं उन को धर्म के साथ मान ली हैं।

मूर्त्तिपूजा तो नहीं करते किन्तु उस से विशेष ग्रन्थ की पूजा करते हैं, क्या यह मूर्त्तिपूजा नहीं है? किसी जड़ पदार्थ के सामने शिर झुकाना वा उस की पूजा करनी सब मूर्त्तिपूजा है। जैसे मूर्त्तिवालों ने अपनी दुकान जमाकर जीविका ठाड़ी

की है वैसे इन लोगों ने भी कर ली है। जैसे पूजारी लोग मूर्त्ति का दर्शन कराते; भेंट चढ़वाते हैं वैसे नानकपन्थी लोग ग्रन्थ की पूजा करते; कराते; भेंट भी चढ़वाते हैं। अर्थात् मूर्त्तिपूजा वाले जितना वेद का मान्य करते हैं उतना ये लोग ग्रन्थसाहब वाले नहीं करते। हां! यह कहा जा सकता है कि इन्होंने वेदों को न सुना न देखा; क्या करें? जो सुनने और देखने में आवें तो बुद्धिमान् लोग जो कि हठी दुराग्रही नहीं हैं वे सब सम्प्रदाय वाले वेदमत में आ जाते हैं। परन्तु इन सब ने भोजन का बखेड़ा बहुत सा हटा दिया है। जैसे इस को हटाया वैसे विषयासक्ति दुरभिमान को भी हटाकर वेदमत की उन्नति करें तो बहुत अच्छी बात है।

(प्रश्न) दादूपन्थी का मार्ग तो अच्छा है?

(उत्तर) अच्छा तो वेदमार्ग है, जो पकड़ा जाय तो पकड़ो, नहीं तो सदा गोते खाते रहोगे। इनके मत में दादू जी का जन्म गुजरात में हुआ था। पुनः जयपुर के पास 'आमेर' में रहते थे। तेली का काम करते थे। ईश्वर की सृष्टि की विचित्र लीला है कि दादू जी भी पुजाने लग गये। अब वेदादि शास्त्रों की सब बातें छोड़कर 'दादूराम-दादूराम' में ही मुक्ति मान ली है। जब सत्योपदेशक नहीं होता तब ऐसे-ऐसे ही बखेड़े चला करते हैं।

थोड़े दिन हुए कि एक 'रामसनेही' मत शाहपुरा से चला है। उन्होंने सब वेदोक्त धर्म को छोड़के 'राम-राम' पुकारना अच्छा माना है। उसी में ज्ञान, ध्यान, मुक्ति मानते हैं। परन्तु जब भूख लगती है तब 'रामनाम' में से रोटी शाक नहीं निकलता क्योंकि खानपान आदि तो गृहस्थों के घर ही में मिलते हैं। वे भी मूर्त्तिपूजा को धिक्कारते हैं परन्तु आप स्वयं मूर्त्ति बन रहे हैं। स्त्रियों के संग में बहुत रहते हैं, क्योंकि राम जी को 'राम की' के विना आनन्द ही नहीं मिल सकता।

एक रामचरण नामक साधु हुआ है जिस का मत मुख्य कर 'शाहपुरा' स्थान मेवाड़ से चला है। वे 'राम-राम' कहने ही को परममन्त्र और इसी को सिद्धान्त मानते हैं। उन का एक ग्रन्थ कि जिस में सन्त दास जी आदि की वाणी हैं। ऐसा लिखते हैं—

उनका वचन

भरम रोग तब ही मिट्या, रट्या निरंजन राइ ।
तब जम का कागज फट्या, कट्या कर्म तब जाइ॥ १ ॥ साखी ६॥

अब बुद्धिमान् लोग विचार लेवें कि 'राम-राम' करने से भ्रम जो कि अज्ञान है, वा यमराज का पापानुकूल शासन अथवा किये हुए कर्म कभी छूट सकते हैं वा नहीं? यह केवल मनुष्यों को पापों में फंसाना और मनुष्यजन्म को नष्ट कर देना है। अब इन का जो मुख्य गुरु हुआ है—'रामचरण' उसके वचन—

महमा नांव प्रताप की, सुणौ सरवण चित लाइ।
रामचरण रसना रटौ, क्रम सकल झड़ जाइ॥
जिन जिन सुमिर्‌या नांवकूं, सो सब उतर्‌या पार।
रांमचरण जो वीसर्‌या, सो ही जम के द्वार॥
रांम विना सब झूठ बतायो। रांम भजत छूट्या सब क्रम्मा॥
चंद अरु सूर देइ परकम्मा। राम कहे तिन कूं भै नाहीं॥
तीन लोक में कीरति गाहीं। रांम रटत जम जोर न लागै॥

रांम नाम लिख पथर तराई। भगति हेति औतार ही धरही॥
ऊंच नीच कुल भेद बिचारै। सो तो जनम आपणो हारै॥
सन्तां कै कुल दीसै नाहीं। रांम रांम कह राम सम्हांहीं॥
ऐसो कुण जो कीरति गावै। हरि हरिजन की पार न पावै॥
रांम संतां का अन्त न आवै। आप आपकी बुद्धि सम गावै॥

इनका खण्डन—प्रथम तो रामचरण आदि के ग्रन्थ देखने से विदित होता है कि यह ग्रामीण एक सादा सीधा मनुष्य था। न वह कुछ पढ़ा था; नहीं तो ऐसी गपड़चौथ क्यों लिखता? यह केवल इन को भ्रम है कि राम-राम कहने से कर्म छूट जायें। केवल ये अपना और दूसरों का जन्म खोते हैं। जम का भय बड़ा भारी है परन्तु राजसिपाही, चोर, डाकू, व्याघ्र, सर्प, बीछू और मच्छर आदि का भय कभी नहीं छूटता। चाहे रात दिन राम-राम किया करे कुछ भी नहीं होगा। जैसे 'सक्कर-सक्कर' कहने से मुख मीठा नहीं होता वैसे सत्यभाषणादि कर्म किये विना राम-राम करने से कुछ भी नहीं होगा। और यदि राम-राम करना, इन का राम नहीं सुनता तो जन्म भर कहने से भी नहीं सुनेगा और जो सुनता है तो दूसरी वार भी राम-राम कहना व्यर्थ है। इन लोगों ने अपना पेट भरने और दूसरों का भी जन्म नष्ट करने के लिये एक पाखण्ड खड़ा किया है। सो यह बड़ा आश्चर्य हम सुनते और देखते हैं कि नाम तो धरा रामस्नेही और काम करते हैं रांडसनेही का। जहां देखो वहां रांड ही रांड सन्तों को घेर रही हैं। यदि ऐसे-ऐसे पाखण्ड न चलते तो आर्य्यावर्त्त देश की दुर्दशा क्यों होती? ये लोग अपने चेलों को भूंठन खिलाते हैं और स्त्रियां भी लम्बी पड़ के दण्डवत् प्रणाम करती हैं। एकान्त में भी स्त्रियों और साधुओं की बैठक होती रहती है।

अब दूसरी इन की शाखा 'खेड़ापा' ग्राम मारवाड़ देश से चली है। उस का इतिहास—एक रामदास नामक जाति का ढेढ़ बड़ा चालाक था। उस के दो स्त्रियां थीं। वह प्रथम बहुत दिन तक औघड़ होकर कुत्तों के साथ खाता रहा। पीछे वामी कूण्डापंथी। पीछे 'रामदेव' का 'कामड़िया'[१] बना। अपनी दोनों स्त्रियों के साथ गाता था। ऐसे घूमता-घूमता 'सीथल'[२] में ढेढ़ों का गुरु 'हररामदास' था; उस से मिला। उस ने उस को 'रामदेव' का पन्थ बता के अपना चेला बनाया। उस रामदास ने खेड़ापा ग्राम में जगह बनाई और इस का इधर मत चला। उधर शाहपुरे में रामचरण का। उस का भी इतिहास ऐसा सुना है कि वह जयपुर का बनियां था। उसने 'दांतड़ा' ग्राम में एक साधु से वेष लिया और उस को गुरु किया और शाहपुरे में आके टिक्की जमाई। भोले मनुष्यों में पाखण्ड की जड़ शीघ्र जम जाती है; जम गई। इन सब में ऊपर के रामचरण के वचनों के प्रमाण से चेला करके ऊंच नीच का कुछ भेद नहीं। ब्राह्मण से अन्त्यज पर्यन्त इन में चेले बनते हैं। अब भी कूण्डापन्थी से ही हैं क्योंकि मट्टी के कूण्डों में ही खाते हैं। और साधुओं की भूठन खाते हैं। वेदधर्म से, माता, पिता संसार के व्यवहार से बहका कर छुड़ा देते और चेला बना लेते हैं, अब राम नाम को महामन्त्र मानते हैं और इसी को 'छुच्छम'[३] वेद भी कहते

१. **राजपूताने में 'चमार' लोग भगवे वस्त्र रंग कर 'रामदेव' आदि के गीत, जिन को वे 'शब्द' कहते हैं, चमारों और अन्य जातियों को सुनाते हैं वे 'कामड़िये' कहलाते हैं।**
२. **'सीथल' जोधपुर के राज्य में एक बड़ा ग्राम है।**
३. **छुच्छम अर्थात् सूक्ष्म।**

हैं। राम-राम कहने से अनन्त जन्मों के पाप छूट जाते हैं। इस के विना मुक्ति किसी की नहीं होती। जो श्वास और प्रश्वास के साथ राम-राम कहना बतावे उस को सत्यगुरु कहते हैं और सत्यगुरु को परमेश्वर से भी बड़ा मानते हैं और उस की मूर्त्ति का ध्यान करते हैं। साधुओं के चरण धो के पीते हैं। जब गुरु से चेला दूर जावे तो गुरु के नख और डाढ़ी के बाल अपने पास रख लेवे। उस का चरणामृत नित्य लेवे, रामदास और हररामदास के वाणी के पुस्तक को वेद से अधिक मानते हैं। उस की परिक्रमा और आठ दण्डवत् प्रणाम करते हैं और जो गुरु समीप हो तो गुरु को दण्डवत् प्रणाम कर लेते हैं। स्त्री वा पुरुष को राम-राम एक सा ही मन्त्रोपदेश करते हैं और नामस्मरण ही से कल्याण मानते हैं। पुनः पढ़ने में पाप समझते हैं। उन की साखी—

पंडताइ पाने पड़ी, ओ पूरब लो पाप ।
राम-राम सुमर्‍यां विना, रइग्यौ रीतो आप॥१॥
वेद पुराण पढ़े पढ़ गीता, रांमभजन बिन रइ गये रीता॥

ऐसे-ऐसे पुस्तक बनाये हैं। स्त्री को पति की सेवा करने में पाप और गुरु साधु की सेवा में धर्म बतलाते हैं। वर्णाश्रम को नहीं मानते। जो ब्राह्मण रामस्नेही न हो तो उस को नीच और चाण्डाल रामस्नेही हो तो उस को उत्तम जानते हैं। अब ईश्वर का अवतार नहीं मानते और रामचरण का वचन जो ऊपर लिख आये कि—

भगति हेति औतार ही धरही॥

भक्ति और सन्तों के हित अवतार को भी मानते हैं। इत्यादि पाखण्ड प्रपञ्च इन का जितना है सो आर्य्यावर्त्त देश का अहितकारक है। इतने ही से बुद्धिमान् बहुत सा समझ लेंगे।

(प्रश्न) गोकुलिये गुसांइयों का मत तो बहुत अच्छा है। देखो! कैसा ऐश्वर्य भोगते हैं। क्या यह ऐश्वर्य लीला के विना ऐसा हो सकता है?

(उत्तर) यह ऐश्वर्य गृहस्थ लोगों का है। गुसांइयों का कुछ नहीं।

(प्रश्न) वाह-वाह! गुसांइयों के प्रताप से है। क्योंकि ऐसा ऐश्वर्य दूसरों को क्यों नहीं मिलता?

(उत्तर) दूसरे भी इसी प्रकार का छल प्रपञ्च रचें तो ऐश्वर्य मिलने में क्या सन्देह है? और जो इन से अधिक धूर्त्तता करते तो अधिक भी ऐश्वर्य्य हो सकता है।

(प्रश्न) वाह जी वाह! इस में क्या धूर्त्तता है? यह तो सब गोलोक की लीला है।

(उत्तर) गोलोक की लीला नहीं किन्तु गुसांइयों की लीला है। जो गोलोक की लीला है तो गोलोक भी ऐसा ही होगा। यह मत 'तैलङ्ग' देश से चला है। क्योंकि एक तैलङ्गी लक्ष्मणभट्ट नामक ब्राह्मण विवाह कर किसी कारण से माता पिता और स्त्री को छोड़ काशी में जा के उस ने संन्यास ले लिया था और झूठ बोला था कि मेरा विवाह नहीं हुआ। दैवयोग से उस के माता, पिता और स्त्री ने सुना कि काशी में संन्यासी हो गया है। उसके माता-पिता और स्त्री काशी में पहुंच कर जिस ने उस को संन्यास दिया था उस से कहा कि इस को संन्यासी क्यों किया?

देखो! इस की यह युवति स्त्री है और स्त्री ने कहा कि यदि आप मेरे पति को मेरे साथ न करें तो मुझ को भी संन्यास दे दीजिये। तब तो उस को बुला के कहा कि—तू बड़ा मिथ्यावादी है। संन्यास छोड़ गृहाश्रम कर क्योंकि तूने झूठ बोल कर संन्यास लिया। उसने पुनः वैसा ही किया। संन्यास छोड़ उस के साथ हो लिया। देखो! इस मत का मूल ही झूठ कपट से जमा। जब तैलङ्ग देश में गये उस को जाति में किसी ने न लिया। तब वहां से निकल कर घूमने लगे। 'चरणार्गढ़' जो काशी के पास है उस के समीप 'चम्पारण्य' नामक जङ्गल में चले जाते थे। वहां कोई एक लड़के को जङ्गल में छोड़ चारों ओर दूर-दूर आगी जला कर चला गया था। क्योंकि छोड़ने वाले ने यह समझा था जो आगी न जलाऊंगा तो अभी कोई जीव मार डालेगा। लक्ष्मणभट्ट और उस की स्त्री ने लड़के को लेकर अपना पुत्र बना लिया। फिर काशी में जा रहे। जब वह लड़का बड़ा हुआ तब उस के मां, बाप का शरीर छूट गया। काशी में बाल्यावस्था से युवावस्था तक कुछ पढ़ता भी रहा, फिर और कहीं जा के एक विष्णुस्वामी के मन्दिर में चेला हो गया। वहां से कभी कुछ खटपट होने से काशी को फिर चला गया और संन्यास ले लिया। फिर कोई वैसा ही जातिबहिष्कृत ब्राह्मण काशी में रहता था। उसकी लड़की युवति थी। उस ने इस से कहा कि तू संन्यास छोड़ मेरी लड़की से विवाह कर ले। वैसा ही हुआ। जिस के बाप ने जैसी लीला की थी वैसी पुत्र क्यों न करे? उस स्त्री को लेके वहीं चला गया कि जहां प्रथम विष्णुस्वामी के मन्दिर में चेला हुआ था। विवाह करने से उन को वहां से निकाल दिया। फिर ब्रज देश में कि जहां अविद्या ने घर कर रखा है; जाकर अपना प्रपञ्च अनेक प्रकार की छल युक्तियों से फैलाने लगा और मिथ्या बातों की प्रसिद्धि करने लगा कि श्रीकृष्ण मुझ को मिले और कहा कि 'जो गोलोक से 'दैवी जीव' मर्त्यलोक में आये हैं उन को ब्रह्मसम्बन्ध आदि से पवित्र करके गोलोक में भेजो।' इत्यादि मूर्खों को प्रलोभन की बातें सुना के थोड़े से लोगों को अर्थात् ८४ चौरासी वैष्णव बनाये और निम्नलिखित मन्त्र बना लिये और उन में भी भेद रक्खा। जैसे—

श्रीकृष्णः शरणं मम॥ १॥

क्लीं कृष्णाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा॥ २॥

ये दोनों साधारण मन्त्र हैं परन्तु अगला मन्त्र ब्रह्मसम्बन्ध और समर्पण कराने का है—

श्रीकृष्णः शरणं मम सहस्रपरिवत्सरमितकालजातकृष्णवियोगजनित-तापक्लेशानन्ततिरोभावोऽहं भगवते कृष्णाय देहेन्द्रियप्राणान्तःकरणतद्धर्मांश्च दारागारपुत्राप्तवित्तेह पराण्यात्मना सह समर्प्पयामि दासोऽहं कृष्ण तवास्मि॥

इस मन्त्र का उपदेश करके शिष्य, शिष्याओं को समर्पण कराते हैं। **'क्लीं कृष्णायेति'**—यह **'क्लीं'** तन्त्र ग्रन्थ का है। इस से विदित होता है कि यह वल्लभ मत भी वाममार्गियों का भेद है। इसी से स्त्री-संग गुसाईं लोग बहुधा करते हैं।

'गोपीवल्लभेति'—क्या कृष्ण गोपियों ही को प्रिय थे; अन्य को नहीं? स्त्रियों को प्रिय वह होता है जो स्त्रैण अर्थात् स्त्रीभोग में फंसा हो। क्या श्रीकृष्ण जी ऐसे थे?

अब **'सहस्रपरिवत्सरेति'**—सहस्र वर्षों की गणना व्यर्थ है क्योंकि वल्लभ

और उस के शिष्य कुछ सर्वज्ञ नहीं हैं। क्या कृष्ण का वियोग सहस्र वर्षों से हुआ और आज लों अर्थात् जब लों वल्लभ का मत न था; न वल्लभ जन्मा था; उस के पूर्व अपने दैवी जीवों के उद्धार करने को क्यों न आया?

'ताप' और 'क्लेश' ये दोनों पर्यायवाची हैं। इन में से एक का ग्रहण करना उचित था; दो का नहीं।

'अनन्त' शब्द का पाठ करना व्यर्थ है, क्योंकि जो अनन्त शब्द रक्खो तो 'सहस्र' शब्द का पाठ न रखना चाहिये और जो सहस्र शब्द का पाठ रक्खो तो अनन्त शब्द का पाठ रखना सर्वथा व्यर्थ है। और जो अनन्तकाल लों 'तिरोहित' अर्थात् आच्छादित रहै उस की मुक्ति के लिये वल्लभ का होना भी व्यर्थ है, क्योंकि अनन्त का अन्त नहीं होता।

भला! देहेन्द्रिय, प्राणान्तःकरण और उसके धर्म स्त्री, स्थान, पुत्र, प्राप्तधन का अर्पण कृष्ण को क्यों करना? क्योंकि कृष्ण पूर्णकाम होने से किसी के देहादि की इच्छा नहीं कर सकते और देहादि का अर्पण करना भी नहीं हो सकता क्योंकि देह के अर्पण से; नखशिखाग्रपर्यन्त देह कहाता है; उस में जो कुछ अच्छी बुरी वस्तु है मल मूत्रादि का भी अर्पण कैसे कर सकोगे?

और जो पाप पुण्यरूप कर्म होते हैं उन को कृष्णार्पण करने से उन के फलभागी भी कृष्ण ही होवें अर्थात् नाम तो कृष्ण का लेते हैं और समर्पण अपने लिये कराते हैं। जो कुछ देह में मलमूत्रादि हैं वह भी गोसाईं जी के अर्पण क्यों नहीं होता? **'क्या मीठा-मीठा गड़प्प और कडुवा-कडुवा थू?'**

और यह भी लिखा है कि गोसाईं जी के अर्पण करना, अन्य मत वाले के नहीं। यह सब स्वार्थसिन्धुपन और पराये धनादि पदार्थ हरने और वेदोक्त धर्मनाश करने की लीला रची है। देखो! यह वल्लभ का प्रपञ्च—

श्रावणस्यामले पक्षे, एकादश्यां महानिशि।
साक्षाद्भगवता प्रोक्तं तदक्षरश उच्यते॥ १॥
ब्रह्मसम्बन्धकरणात्सर्वेषां देहजीवयोः।
सर्वदोषनिवृत्तिर्हि दोषाः पञ्चविधाः स्मृताः॥ २॥
सहजा देशकालोत्था लोकवेदनिरूपिताः।
संयोगजाः स्पर्शजाश्च न मन्तव्याः कदाचन॥ ३॥
अन्यथा सर्वदोषाणां न निवृत्तिः कथञ्चन।
असमर्पितवस्तूनां तस्माद्वर्ज्जनमाचरेत्॥ ४॥
निवेदिभिः समर्प्यैव सर्वं कुर्यादिति स्थितिः।
न मतं देवदेवस्य स्वामिभुक्तिसमर्प्पणम्॥ ५॥
तस्मादादौ सर्वकार्ये सर्ववस्तुसमर्प्पणम्।
दत्तापहारवचनं तथा च सकलं हरेः॥ ६॥
न ग्राह्यमिति वाक्यं हि भिन्नमार्गपरं मतम्।
सेवकानां यथा लोके व्यवहारः प्रसिध्यति॥ ७॥
तथा कार्य्यं समर्प्यैव सर्वेषां ब्रह्मता ततः।
गङ्गात्वे गुणदोषाणां गुणदोषादिवर्णनम्॥ ८॥

इत्यादि श्लोक गोसांइयों के **सिद्धान्तरहस्यादि** ग्रन्थों में लिखे हैं। यही

गोसांइयों के मत का मूल तत्त्व है। भला इन से कोई पूछे कि श्रीकृष्ण के देहान्त हुए कुछ कम पांच सहस्र वर्ष बीते; वह वल्लभ से श्रावण मास की आधी रात को कैसे मिल सके?॥ १॥

जो गोसाईं का चेला होता है और उस को सब पदार्थों का समर्पण करता है उस के शरीर और जीव के सब दोषों की निवृत्ति हो जाती है। यही वल्लभ का प्रपञ्च मूर्खों को बहका कर अपने मत में लाने का है। जो गोसाईं के चेले चेलियों के सब दोष निवृत्त हो जावें तो रोग दारिद्र्यादि दुःखों से पीड़ित क्यों रहें? और वे दोष पांच प्रकार के होते हैं॥ २॥

एक—सहज दोष जो कि स्वाभाविक अर्थात् काम, क्रोधादि से उत्पन्न होते हैं। **दूसरे**—किसी देश काल में नाना प्रकार के पाप किये जायें। **तीसरे**—लोक में जिन को भक्ष्याभक्ष्य कहते और वेदोक्त जो कि मिथ्याभाषणादि हैं। **चौथे**—संयोगज जो कि बुरे संग से अर्थात् चोरी, जारी, माता, भगिनी, कन्या, पुत्रवधू, गुरुपत्नी आदि से संयोग करना। **पांचवें**—स्पर्शज अस्पर्शनीयों को स्पर्श करना। इन पांच दोषों को गोसाईं लोगों के मत वाले कभी न मानें अर्थात् यथेष्टाचार करें॥ ३॥

अन्य कोई प्रकार दोषों की निवृत्ति के लिये नहीं है विना गोसाईं जी के मत के। इसलिये विना समर्पण किये पदार्थ को गोसाईं जी के चेले न भोगें। इसीलिये इनके चेले अपनी स्त्री, कन्या, पुत्रवधू और धनादि पदार्थों को भी समर्पित करते हैं परन्तु समर्पण का नियम यह है कि जब लों गोसाईं जी की चरणसेवा में समर्पित न होवे तब लों उस का स्वामी स्वस्त्री को स्पर्श न करे॥ ४॥

इस से गोसाइयों के चेले समर्पण करके पश्चात् अपने-अपने पदार्थ का भोग करें क्योंकि स्वामी के भोग करे पश्चात् समर्पण नहीं हो सकता॥ ५॥

इस से प्रथम सब कामों में सब वस्तुओं का समर्पण करें। प्रथम गोसाईं जी को भार्यादि समर्पण करके पश्चात् ग्रहण करें वैसे ही हरि को सम्पूर्ण पदार्थ समर्पण करके ग्रहण करें॥ ६॥

गोसाईं जी के मत से भिन्न मार्ग के वाक्यमात्र को भी गोसांइयों के चेला, चेली कभी न सुनें, न ग्रहण करें। यही उन के शिष्यों का व्यवहार प्रसिद्ध है॥ ७॥

वैसे ही सब वस्तुओं का समर्पण करके सब के बीच में ब्रह्मबुद्धि करे। उस के पश्चात् जैसे गङ्गा में अन्य जल मिलकर गङ्गारूप हो जाते हैं वैसे ही अपने मत में गुण और दूसरे के मत में दोष हैं इसलिये अपने मत में गुणों का वर्णन किया करें॥ ८॥

अब देखिये! गोसांइयों का मत सब मतों से अधिक अपना प्रयोजन सिद्ध करनेहारा है। भला इन गोसांइयों को कोई पूछे कि ब्रह्म का एक लक्षण भी तुम नहीं जानते तो शिष्य शिष्याओं को ब्रह्मसम्बन्ध कैसे करा सकोगे? जो कहो कि हम ही ब्रह्म हैं हमारे साथ सम्बन्ध होने से ब्रह्मसम्बन्ध हो जाता है। सो तुम में ब्रह्म के गुण, कर्म, स्वभाव एक भी नहीं है, पुनः क्या तुम केवल भोग विलास के लिये ब्रह्म बन बैठे हो? भला! शिष्य, शिष्याओं को तो तुम अपने साथ समर्पित करके शुद्ध करते हो परन्तु तुम और तुम्हारी स्त्री, कन्या तथा पुत्रवधू आदि असमर्पित रह जाने से अशुद्ध रह गये वा नहीं? और तुम असमर्पित वस्तु को अशुद्ध मानते हो पुनः उन से उत्पन्न हुए तुम लोग अशुद्ध क्यों नहीं? इसलिये तुम को भी उचित है कि अपनी स्त्री, कन्या तथा पुत्रवधू आदि को अन्य मत वालों के साथ समर्पित

कराया करो।

जो कहो कि नहीं-नहीं तो तुम भी अन्य स्त्री पुरुष धनादि पदार्थों को समर्पित करना कराना छोड़ देओ। भला अब लों जो हुआ सो हुआ परन्तु अब अपनी मिथ्या प्रपञ्चादि बुराइयों को छोड़ो और सुन्दर ईश्वरोक्त वेदविहित सुपथ में आकर अपने मनुष्यरूपी जन्म को सफल कर धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इस चतुष्टय फल को प्राप्त होकर आनन्द भोगो।

और देखिये! ये गोसाईं लोग अपने सम्प्रदाय को '**पुष्टि**' मार्ग कहते हैं अर्थात् खाने, पीने, पुष्ट होने और सब स्त्रियों के संग यथेष्ट भोग विलास करने को पुष्टिमार्ग कहते हैं परन्तु इनसे पूछना चाहिये कि जब बड़े दुःखदायी भगन्दरादि रोगग्रस्त होकर ऐसे झींक-झींक मरते हैं कि जिस को ये ही जानते होंगे। सच पूछो तो पुष्टिमार्ग नहीं किन्तु कुष्ठिमार्ग है। जैसे कुष्ठी के शरीर की सब धातु पिघल-पिघल कर निकल जाती हैं और विलाप करता हुआ शरीर छोड़ता है ऐसी ही लीला इन की भी देखने में आती है। इसलिये नरकमार्ग भी इसी को कहना संघटित हो सकता है। क्योंकि दुःख का नाम नरक और सुख का नाम स्वर्ग है। इसी प्रकार मिथ्या जाल रच के विचारे भोले-भोले मनुष्यों को जाल में फंसाया और अपने आपको श्रीकृष्ण मान कर सब के स्वामी बनते हैं।

यह कहते हैं कि जितने दैवी जीव गोलोक से यहां आये हैं उन के उद्धार करने के लिये हम लीला पुरुषोत्तम जन्मे हैं। जब लों हमारा उपदेश न ले तब लों गोलोक की प्राप्ति नहीं होती। वहां एक श्रीकृष्ण पुरुष और सब स्त्रियां हैं। वाह जी वाह! भला तुम्हारा मत है!! गोसांइयों के जितने चेले हैं वे सब गोपियां बन जावेंगी। अब विचारिये! भला जिस पुरुष के दो स्त्री होती हैं उस की बड़ी दुर्दशा हो जाती है तो जहां एक पुरुष और क्रोड़ों स्त्री एक के पीछे लगी हैं उस के दुःख का क्या पारावार है? जो कहो कि श्रीकृष्ण में बड़ा भारी सामर्थ्य है, सब को प्रसन्न करते हैं तो जो उस की स्त्री जिस को स्वामिनी जी कहते हैं उस में भी श्रीकृष्ण के समान सामर्थ्य होगा क्योंकि वह उन की अर्द्धांगी है।

जैसे यहाँ स्त्री पुरुष की कामचेष्टा तुल्य अथवा पुरुष से स्त्री की अधिक होती है तो गोलोक में क्यों नहीं? जो ऐसा है तो अन्य स्त्रियों के साथ स्वामिनी जी की अत्यन्त लड़ाई बखेड़ा मचता होगा क्योंकि सपत्नीभाव बहुत बुरा होता है। पुनः गोलोक स्वर्ग की अपेक्षा नरकवत् हो गया होगा अथवा जैसे बहुत स्त्रीगामी पुरुष भगन्दरादि रोगों से पीड़ित रहता है वैसा ही गोलोक में भी होगा। छि! छि!! छि!!! ऐसे गोलोक से मर्त्यलोक ही विचारा भला है।

देखो! जैसे यहां गोसाईं जी अपने को श्रीकृष्ण मानते हैं और बहुत स्त्रियों के साथ लीला करने से भगन्दर तथा प्रमेहादि रोगों से पीड़ित होकर महादुःख भोगते हैं। अब कहिये जिन का स्वरूप गोसाईं पीड़ित होता है तो गोलोक का स्वामी श्रीकृष्ण इन रोगों से पीड़ित क्यों न होगा? और जो नहीं है तो उन का स्वरूप गोसाईं जी पीड़ित क्यों होते हैं?

(प्रश्न) मर्त्यलोक में लीलावतार धारण करने से रोग दोष होता है; गोलोक में नहीं। क्योंकि वहां रोग दोष ही नहीं है।

(उत्तर) 'भोगे रोगभयम्'। जहां भोग है वहां रोग अवश्य होता है। और श्रीकृष्ण के क्रोड़ान् क्रोड़ स्त्रियों से सन्तान होते हैं वा नहीं और जो होते हैं तो

लड़के-लड़के होते हैं वा लड़की-लड़की? अथवा दोनों? जो कहो कि लड़कियां ही लड़कियां होती हैं तो उन का विवाह किन के साथ होता होगा? क्योंकि वहां विना श्रीकृष्ण के दूसरा कोई पुरुष नहीं। जो दूसरा है तो तुम्हारी प्रतिज्ञा हानि हुई। जो कहो लड़के ही लड़के होते हैं तो भी यही दोष आन पड़ेगा कि उन का विवाह कहां और किन के साथ होता है? अथवा घर के घर में ही गटपट कर लेते हैं अथवा अन्य किसी की लड़कियां वा लड़के हैं तो भी तुम्हारी प्रतिज्ञा 'गोलोक में एक ही श्रीकृष्ण पुरुष नष्ट हो जायेगी और जो कहो कि सन्तान होते ही नहीं तो श्रीकृष्ण में नपुंसकत्व और स्त्रियों में बन्ध्यापन दोष आवेगा। भला यह गोलोक क्या हुआ? जानो दिल्ली के बादशाहों की बीबियों की सेना हुई।

अब जो गोसाईं लोग शिष्य और शिष्याओं का तन, मन तथा धन अपने अर्पण करा लेते हैं। सो भी ठीक नहीं क्योंकि तन तो विवाह समय में स्त्री और पति के समर्पण हो जाता है। पुनः मन भी दूसरे के समर्पण नहीं हो सकता क्योंकि मन ही के साथ तन का भी समर्पण करना बन सकता है और जो करें तो व्यभिचारी कहावेंगे। अब रहा धन उस की भी यही लीला समझो अर्थात् मन के विना कुछ भी अर्पण नहीं हो सकता।

इन गोसांइयों का अभिप्राय यह है कि कमावें तो चेला और आनन्द करें हम। जितने वल्लभ सम्प्रदायी गोसाईं लोग हैं वे अब लों तैलङ्गी जाति में नहीं हैं और जो कोई इन को भूले भटके लड़की देता है वह भी जातिबाह्य होकर भ्रष्ट हो जाता है क्योंकि ये जाति से पतित किये गये और विद्याहीन रात दिन प्रमाद में रहते हैं।

और देखिये! जब कोई गोसाईं जी की पधरावनी करता है तब उसके घर पर जाकर, चुपचाप काठ की पुतली के समान बैठा रहता है; न कुछ बोलता न चालता। बिचारा बोले तो तब जो मूर्ख न होवे। 'मूर्खाणां बलं मौनम्' क्योंकि मूर्खों का बल मौन है जो बोले तो उस की पोल निकल जाय परन्तु स्त्रियों की ओर खूब ध्यान लगा के ताकता रहता है। और जिस की ओर गोसाईं जी देखें तो जानो बड़े ही भाग्य की बात है और उसका पति, भाई, बन्धु, माता, पिता बड़े प्रसन्न होते हैं। वहां सब स्त्रियां गोसाईं जी के पग छूती हैं। जिस पर गोसाईं जी का मन लगे वा कृपा हो उस की अंगुली पैर से दबा देते हैं। वह स्त्री और उस के पति आदि अपना धन्य भाग्य समझते हैं और उस स्त्री से उस के पति आदि सब कहते हैं कि तू गोसाईं जी की चरणसेवा में जा। और जहां कहीं उस के पति आदि प्रसन्न नहीं होते वहां दूती और कुटनियों से काम सिद्ध करा लेते हैं। सच पूछो तो ऐसे काम करने वाले उन के मन्दिरों में और उन के समीप बहुत से रहा करते हैं।

अब इन की दक्षिणा की लीला अर्थात् इस प्रकार मांगते हैं—लाओ भेंट गोसाईं जी की, बहू जी की, लाल जी की, बेटी जी की, मुखिया जी की, बाहरिया जी की, गवैया जी की और ठाकुर जी की। इन सात-आठ दुकानों से यथेष्ट माल मारते हैं। जब कोई गोसाईं जी का सेवक मरने लगता है तब उस की छाती में पग गोसाईं जी धरते हैं और जो कुछ मिलता है उस को गोसाईं जी 'गड़क्क' कर जाते हैं। क्या यह काम महाब्राह्मण और कर्टिया वा मुर्दावली के समान नहीं है?

कोई-कोई चेला विवाह में गुसाईं जी को बुला कर उन्हीं से लड़के-लड़की का पाणिग्रहण कराते हैं और कोई-कोई सेवक जब केशरिया स्नान अर्थात् गोसाईं

जी के शरीर पर स्त्री लोग केशर का उबटना करके फिर एक बड़े पात्र में पट्टा रख के गोसाईं जी को स्त्री पुरुष मिल के स्नान कराते हैं परन्तु विशेष स्त्रीजन स्नान कराती हैं। पुनः जब गोसाईं जी पीताम्बर पहिर और खड़ाऊं पर चढ़ बाहर निकल आते हैं और धोती उसी में पटक देते हैं। फिर उस जल का आचमन उस के सेवक करते हैं और अच्छे मसाला धरके पान बीड़ा गोसाईं जी को देते हैं। वह चाब कर कुछ निगल जाते हैं, शेष एक चांदी के कटोरे में जिस को उन का सेवक मुख के आगे कर देता है उस में पीक उगल देते हैं। उस की भी प्रसादी बंटती है जिस को 'खास' प्रसादी कहते हैं। अब विचारिये कि ये लोग किस प्रकार के मनुष्य हैं। जो मूढ़पन और अनाचार होगा तो इतना ही होगा!

बहुत से समर्पण लेते हैं। उन में से कितने ही वैष्णवों के हाथ का खाते हैं। अन्य का नहीं। कितने ही वैष्णवों के हाथ का भी नहीं खाते; लकड़े लों धो लेते हैं परन्तु आटा, गुड़, चीनी, घी आदि धोये विना उनका अस्पर्श बिगड़ जाता है। क्या करें विचारे! जो इन को धोवें तो पदार्थ ही हाथ से खो बैठें।

वे कहते हैं कि हम ठाकुर जी के रङ्ग, राग, भोग में बहुत सा धन लगा देते हैं परन्तु वे रङ्ग, राग भोग आप ही करते हैं। और सच पूछो तो बड़े-बड़े अनर्थ होते हैं। अर्थात् होली के समय पिचकारियां भर कर स्त्रियों के अस्पर्शनीय अवयव अर्थात् जो गुप्त स्थान हैं उन पर मारते हैं। और रसविक्रय ब्राह्मण के लिए निषिद्ध कर्म है उस को भी करते हैं।

(प्रश्न) गुसाईं जी रोटी, दाल, कढ़ी, भात, शाक और मठरी तथा लड्डू आदि को प्रत्यक्ष हाट में बैठ के तो नहीं बेचते किन्तु अपने नौकर चाकरों को पत्तलें बांट देते हैं वे लोग बेचते हैं गुसाईं जी नहीं।

(उत्तर) गोसाईं जी उन को मासिक रुपये देवें तो वे पत्तलें क्यों लेवें? गुसाईं जी अपने नौकरों के हाथ दाल, भात आदि नौकरी के बदले में बेच देते हैं तो वे ले जाकर हाट बाजार में बेचते हैं। जो गुसाईं जी स्वयं बाहर बेचते तो नौकर जो ब्राह्मणादिक हैं वे तो रसविक्रय दोष से बच जाते। और अकेले गोसाईं जी ही रसविक्रयरूपी पाप के भागी होते। प्रथम तो इस पाप में आप डूबे फिर औरों को भी समेटा और कहीं-कहीं नाथद्वारा आदि में गोसाईं जी भी बेचते हैं। रसविक्रय करना नीचों का काम है, उत्तमों का नहीं। ऐसे-ऐसे लोगों ने इस आर्य्यावर्त्त की अधोगति कर दी।

(प्रश्न) स्वामीनारायण का मत कैसा है?

(उत्तर) **'यादृशी शीतला देवी तादृशो वाहनः खरः।'** जैसी गुसाईं जी की धनहरणादि में विचित्र लीला है वैसी ही स्वामीनारायण की भी है। एक 'सहजानन्द' नामक अयोध्या के समीप एक ग्राम का जन्मा हुआ था। वह ब्रह्मचारी होकर गुजरात, काठियावाड़, कच्छ, भुज आदि देशों में फिरता था। उसने देखा कि यह देश मूर्ख भोला भाला है। चाहें जैसे इन को अपने मत में झुका लें वैसे ही ये लोग झुक सकते हैं। वहां उस ने दो चार शिष्य बनाये। उन ने आपस में सम्मति कर प्रसिद्ध किया कि सहजानन्द नारायण का अवतार और बड़ा सिद्ध है। और भक्तों को चतुर्भुज मूर्ति धारण कर साक्षात् दर्शन भी देता है।

एक वार काठियावाड़ में किसी काठी अर्थात् जिस का **'दादाखाचर'** गड्ढे का भूमिया (ज़िमीदार) था। उस को शिष्यों ने कहा कि-तुम चतुर्भुज नारायण का

दर्शन करना चाहो तो हम सहजानन्द जी से प्रार्थना करें? उस ने कहा बहुत अच्छी बात है। वह भोला आदमी था। एक कोठरी में सहजानन्द ने शिर पर मुकट धारण कर और शंख, चक्र अपने हाथ में ऊपर को धारण किया और एक दूसरा आदमी उसके पीछे खड़ा रह कर गदा, पद्म अपने हाथ में लेकर सहजानन्द की बगल में से आगे को हाथ निकाल चतुर्भुज के तुल्य बन ठन गये। दादाखाचर से उन के चेलों ने कहा कि एक बार आंख उठा कर देख के फिर आंख मींच लेना और झट इधर को चले आना। जो बहुत देखोगे तो नारायण कोप करेंगे अर्थात् चेलों के मन में तो यह था कि हमारे कपट की परीक्षा न कर लेवे। उस को ले गये, वह सहजानन्द कलाबत्तू और चलकते हुए रेशमी कपड़े धारण किये था। अन्धेरी कोठरी में खड़ा था। उस के चेलों ने एकदम लालटेन से कोठरी की ओर उजाला किया। दादाखाचर ने देखा तो चतुर्भुज मूर्त्ति दीखी, फिर झट दीपक को आड़ में कर दिया। वे सब नीचे गिर, नमस्कार कर दूसरी ओर चले आये और उसी समय बीच में बातें कीं कि तुम्हारा धन्य भाग्य है। अब तुम महाराज के चेले हो जाओ। उस ने कहा बहुत अच्छी बात। जब लों फिर के दूसरे स्थान में गये तब लों दूसरे वस्त्र धारण करके सहजानन्द गद्दी पर बैठा मिला। तब चेलों ने कहा कि देखो अब दूसरा रूप धारण करके यहां विराजमान हैं। वह दादाखाचर इन के जाल में फंस गया। वहीं से उन के मत की जड़ जमी क्योंकि वह एक बड़ा भूमिया था। वहीं अपनी जड़ जमा ली, पुनः इधर उधर घूमता रहा। सब को उपदेश करता था, बहुतों को साधु भी बनाता था। कभी-कभी किसी साधु की कण्ठ की नाड़ी को मल कर मूर्छित भी कर देता था और सब से कहता था कि हमने इन को समाधि चढ़ा दी है। ऐसी-ऐसी धूर्त्तता में काठियावाड़ के भोले भाले लोग उसके पेच में फंस गये। जब वह मर गया तब उस के चेलों ने बहुत सा पाखण्ड फैलाया।

इस में यह दृष्टान्त उचित होगा कि जैसे कोई एक चोरी करता पकड़ा गया था। न्यायाधीश ने उस की नाक काट डालने का दण्ड किया। जब उस की नाक काटी गई तब वह धूर्त्त नाचने गाने और हंसने लगा। लोगों ने पूछा कि तू क्यों हंसता है? उस ने कहा कुछ कहने की बात नहीं है । लोगों ने पूछा—ऐसी कौन सी बात है? उस ने कहा बड़ी भारी आश्चर्य की बात है, हम ने ऐसी कभी नहीं देखी । लोगों ने कहा—कहो! क्या बात है? उस ने कहा कि मेरे सामने साक्षात् चतुर्भुज नारायण खड़े हैं। मैं देख कर बड़ा प्रसन्न होकर नाचता गाता अपने भाग्य को धन्यवाद देता हूं कि मैं नारायण का साक्षात् दर्शन कर रहा हूं। लोगों ने कहा हम को दर्शन क्यों नहीं होता? वह बोला नाक की आड़ हो रही है। जो नाक कटवा डालो तो नारायण दीखे, नहीं तो नहीं। उन में से किसी मूर्ख ने कहा कि नाक जाय तो जाय परन्तु नारायण का दर्शन अवश्य करना चाहिये। उस ने कहा कि मेरी भी नाक काटो, नारायण को दिखलाओ। उस ने उस की नाक काट कर कान में कहा कि तू भी ऐसा ही कर, नहीं तो मेरा और तेरा उपहास होगा। उस ने भी समझा कि अब नाक तो आती नहीं इसलिए ऐसा ही कहना ठीक है। तब तो वह भी वहां उसी के समान नाचने, कूदने, गाने, बजाने, हंसने और कहने लगा कि मुझ को भी नारायण दीखता है । वैसे होते-होते एक सहस्र मनुष्य का झुण्ड हो गया और बड़ा कोलाहल मचा और अपने सम्प्रदाय का नाम 'नारायणदर्शी' रक्खा । किसी मूर्ख राजा ने सुना, उन को बुलाया। जब राजा उन के पास गया तब तो

वे बहुत नाचने, कूदने, हंसने लगे। तब राजा ने पूछा कि यह क्या बात है। उन्होंने कहा कि साक्षात् नारायण हम को दीखता है।

(राजा) हम को क्यों नहीं दीखता?

(नारायणदर्शी) जब तक नाक है तब तक नहीं दीखेगा और जब नाक कटवा लोगे तब नारायण प्रत्यक्ष दीखेंगे। उस राजा ने विचारा कि यह बात ठीक है।

ज्योतिषी जी! मुहूर्त्त देखिये।

ज्योतिषी जी ने उत्तर दिया–जो हुकम अन्नदाता! दशमी के दिन प्रातःकाल आठ बजे नाक कटवाने और नारायण के दर्शन करने का बड़ा अच्छा मुहूर्त्त है। वाह रे पोप जी! अपनी पोथी में नाक काटने कटवाने का भी मुहूर्त्त लिख दिया। जब राजा की इच्छा हुई और उन सहस्र नकटों के सीधे बांध दिये तब तो वे बड़े ही प्रसन्न होकर नाचने, कूदने और गाने लगे। यह बात राजा के दीवान आदि कुछ–कुछ बुद्धि वालों को अच्छी न लगी। राजा के एक चार पीढ़ी का बूढ़ा ९० वर्ष का दीवान था। उस को जाकर उस के परपोते ने जो कि उस समय दीवान था; वह बात सुनाई। तब उस वृद्ध ने कहा कि वे धूर्त्त हैं। तू मुझ को राजा के पास ले चल। वह ले गया। बैठते समय राजा ने बड़े हर्षित होके उन नाककटों की बातें सुनाईं। दीवान ने कहा कि सुनिये महाराज! ऐसी शीघ्रता न करनी चाहिए। विना परीक्षा किये पश्चात्ताप होता है।

(राजा) क्या वे सहस्र पुरुष झूठ बोलते होंगे?

(दीवान) झूठ बोलो या सच, विना परीक्षा के सच झूठ कैसे कह सकते हैं?

(राजा) परीक्षा किस प्रकार करनी चाहिए।

(दीवान) विद्या, सृष्टिक्रम, प्रत्यक्षादि प्रमाणों से।

(राजा) जो पढ़ा न हो वह परीक्षा कैसे करे?

(दीवान) विद्वानों के संग से ज्ञान की वृद्धि करके।

(राजा) जो विद्वान् न मिले तो?

(दीवान) पुरुषार्थी को कोई बात दुर्लभ नहीं है।

(राजा) तो आप ही कहिए कैसा किया जाय?

(दीवान) मैं बुड्ढा और घर में बैठा रहता हूं और अब थोड़े दिन जीऊंगा भी। इसलिए प्रथम परीक्षा मैं कर लेऊँ। तत्पश्चात् जैसा उचित समझें वैसा कीजियेगा।

(राजा) बहुत अच्छी बात है। ज्योतिषी जी! दीवान जी के लिये मुहूर्त्त देखो।

(ज्योतिषी) जो महाराज की आज्ञा। यही शुक्ल पञ्चमी १० बजे का मुहूर्त्त अच्छा है। जब पञ्चमी आई तब राजा जी के पास आ कर आठ बजे बुड्ढे दीवान जी ने राजा जी से कहा कि सहस्र दो सहस्र सेना लेके चलना चाहिए।

(राजा) वहां सेना का क्या काम है?

(दीवान) आपको राज्यव्यवस्था की जानकारी नहीं है। जैसा मैं कहता हूं वैसा कीजिये।

(राजा) अच्छा जाओ भाई, सेना को तैयार करो। साढ़े नौ बजे सवारी करके राजा सब को लेकर गया। उस को देख कर वे नाचने और गाने लगे। जाकर

बैठे। उनके महन्त जिस ने यह सम्प्रदाय चलाया था, जिस की प्रथम नाक कटी थी उस को बुलाकर कहा कि आज हमारे दीवान जी को नारायण का दर्शन कराओ। उस ने कहा अच्छा। दश बजे का समय जब आया तब एक थाली मनुष्य ने नाक के नीचे पकड़ रक्खी। उस ने पैना चाकू ले नाक काट थाली में डाल दी और दीवान जी की नाक से रुधिर की धार छूटने लगी। दीवान जी का मुख मलिन पड़ गया। फिर उस धूर्त्त ने दीवान जी के कान में मन्त्रोपदेश किया कि आप भी हंसकर सब से कहिये कि मुझ को नारायण दीखता है। अब नाक कटी हुई नहीं आवेगी। जो ऐसा ना कहोगे तो तुम्हारा बड़ा ठठ्ठा होगा, सब लोग हंसी करेंगे। वह इतना कह अलग हुआ और दीवान जी ने अंगोछा हाथ में ले नाक की आड़ में लगा दिया। जब दीवान जी से राजा ने पूछा, कहिये! नारायण दीखता है वा नहीं? दीवान जी ने राजा के कान में कहा कि कुछ भी नहीं दीखता। वृथा इस धूर्त्त ने सहस्रों मनुष्यों को भ्रष्ट किया। राजा ने दीवान से कहा अब क्या करना चाहिये? दीवान ने कहा—इन को पकड़ के कठिन दण्ड देना चाहिए। जब लों जीवें तब लों बन्दीघर में रखना चाहिए और इस दुष्ट को कि जिस ने इन सब को बिगाड़ा है गधे पर चढ़ा बड़ी दुर्दशा के साथ मारना चाहिए। जब राजा और दीवान कान में बातें करने लगे तब उन्होंने डरके भागने की तैयारी की परन्तु चारों और फौज ने घेरा दे रक्खा था, न भाग सके। राजा ने आज्ञा दी कि सब को पकड़ बेड़ियां डाल दो और इस दुष्ट का काला मुख कर गधे पर चढ़ा, इस के कण्ठ में फटे जूतों का हार पहिना सर्वत्र घुमा छोकरों से धूड़ राख इस पर डलवा चौक-चौक में जूतों से पिटवा कुत्तों से लुंचवा मरवा डाला जावे। जो ऐसा न होवे तो पुनः दूसरे भी ऐसा काम करते न डरेंगे। जब ऐसा हुआ तब नाककटे का सम्प्रदाय बन्द हुआ।

इसी प्रकार सब वेदविरोधी दूसरों का धन हरने में बड़े चतुर हैं। यह सम्प्रदायों की लीला है। ये स्वामिनारायण मत वाले धनहरे छल कपटयुक्त काम करते हैं। कितने ही मूर्खों के बहकाने के लिये मरते समय कहते हैं कि सफेद घोड़े पर बैठ सहजानन्द जी मुक्ति को ले जाने के लिये आये हैं और नित्य इस मन्दिर में एक बार आया करते हैं।

जब मेला होता है तब मन्दिर के भीतर पुजारी रहते हैं और नीचे दुकान लगा रक्खी है। मन्दिर में से दुकान में जाने का छिद्र रखते हैं। जो किसी का नारियल चढ़ाया वही दुकान में फेंक दिया अर्थात् इसी प्रकार एक नारियल दिन में सहस्र बार बिकता है। ऐसे ही सब पदार्थों को बेचते हैं।

जिस जाति का साधु हो उन से वैसा ही काम कराते हैं। जैसे नापित हो उस से नापित का, कुम्हार से कुम्हार का, शिल्पी से शिल्पी का, बनिये से बनिये का और शूद्र से शूद्रादि का काम लेते हैं।

अपने चेलों पर एक कर (टिक्कस) बांध रक्खा है। लाखों क्रोड़ों रुपये ठग के एकत्र कर लिये हैं और करते जाते हैं। जो गद्दी पर बैठता है वह गृहस्थ (विवाह) करता है, आभूषणादि पहिनता है। जहां कहीं पधरावनी होती है वहां गोकुलिये के समान गोसाईं जी, बहू जी आदि के नाम से भेंट पूजा लेते हैं। अपने 'सत्सङ्गी' और दूसरे मत वालों को 'कुसङ्गी' कहते हैं। अपने सिवाय दूसरा कैसा ही उत्तम धार्मिक, विद्वान् पुरुष क्यों न हो परन्तु उस का मान्य और सेवा कभी

नहीं करते क्योंकि अन्य मतस्थ की सेवा करने में पाप गिनते हैं। प्रसिद्धि में उन के साधु स्त्रीजनों का मुख नहीं देखते परन्तु गुप्त न जाने क्या लीला होती होगी? इस की प्रसिद्धि सर्वत्र न्यून हुई है। कहीं-कहीं साधुओं की परस्त्रीगमनादि लीला प्रसिद्ध हो गई है। और उन में जो-जो बड़े-बड़े हैं वे जब मरते हैं तब उन को गुप्त कुवे में फेंक देकर प्रसिद्ध करते हैं कि अमुक महाराज सदेह वैकुण्ठ में गये। सहजानन्द जी आके ले गये। हम ने बहुत प्रार्थना करी कि महाराज इन को न ले जाइये क्योंकि इस महात्मा के यहां रहने से अच्छा है। सहजानन्द जी ने कहा कि नहीं अब इन की वैकुण्ठ में बहुत आवश्यकता है इसलिए ले जाते हैं। हम ने अपनी आंख से सहजानन्द जी को और विमान को देखा तथा जो मरने वाले थे उन को विमान में बैठा दिया। ऊपर को ले गये और पुष्पों की वर्षा करते गये।

और जब कोई साधु बीमार पड़ता है और उस के बचने की आशा नहीं होती तब कहता है कि मैं कल रात को वैकुण्ठ में जाऊंगा। सुना है कि उस रात में जो उस के प्राण न छूटे और मूर्छित हो गया हो तो भी कुवे में फेंक देते हैं क्योंकि जो उस रात को न फेंक दें तो झूठे पड़ें इसलिये ऐसा काम करते होंगे। ऐसे ही जब गोकुलिया गोसाईं मरता है तब उन के चेले कहते हैं कि गोसाईं जी लीला विस्तार कर गये।

जो इन गोसाईं, स्वामीनारायणवालों का उपदेश करने का मन्त्र है वह एक ही है। **'श्रीकृष्णः शरणं मम।'** इसका अर्थ ऐसा करते हैं कि श्रीकृष्ण मेरा शरण है अर्थात् मैं श्रीकृष्ण के शरणागत हूं परन्तु इस का अर्थ श्रीकृष्ण मेरे शरण को प्राप्त अर्थात् मेरे शरणागत हों ऐसा भी हो सकता है। ये सब जितने मत हैं वे विद्याहीन होने से ऊटपटांग शास्त्रविरुद्ध वाक्यरचना करते हैं क्योंकि उन को विद्या के नियम की जानकारी नहीं।

(प्रश्न) माध्व मत तो अच्छा है?

(उत्तर) जैसे अन्य मतावलम्बी हैं वैसा ही माध्व भी है क्योंकि ये भी चक्राङ्कित होते हैं। इन में चक्राङ्कितों से इतना विशेष है कि रामानुजीय एक वार चक्राङ्कित होते हैं और माध्व वर्ष-वर्ष में फिर-फिर चक्राङ्कित होते जाते हैं। चक्राङ्कित कपाल में पीली रेखा और माध्व काली रेखा लगाते हैं। एक माध्व पण्डित से किसी एक महात्मा का शास्त्रार्थ हुआ था—

(महात्मा) तुम ने यह काली रेखा और चांदला (तिलक) क्यों लगाया?

(शास्त्री) इसके लगाने से हम वैकुण्ठ को जायेंगे और श्रीकृष्ण का भी शरीर श्याम रंग था इसलिए हम काला तिलक करते हैं।

(महात्मा) जो काली रेखा और चांदला लगाने से वैकुण्ठ में जाते हों तो सब मुख काला कर लेओ तो कहां जाओगे? क्या वैकुण्ठ के भी पार उतर जाओगे? और जैसा श्रीकृष्ण का सब शरीर काला था। वैसा तुम भी सब शरीर काला कर लिया करो तब श्रीकृष्ण का सादृश्य हो सकता है। इसलिए यह भी पूर्वो के सदृश है।

(प्रश्न) लिङ्गाङ्कित का मत कैसा है?

(उत्तर) जैसा चक्राङ्कित का। जैसे चक्राङ्कित चक्र से दागे जाते और नारायण के विना किसी को नहीं मानते वैसे लिङ्गाङ्कित लिङ्गाकृति से दागे जाते और विना महादेव के अन्य किसी को नहीं मानते। इन में विशेष यह है कि लिङ्गाङ्कित पाषाण

का एक लिङ्ग सोने अथवा चांदी में मढ़वा के गले में डाल रखते हैं। जब पानी भी पीते हैं तब उसको दिखा के पीते हैं। उनका भी मन्त्र शैव के तुल्य रहता है।

ब्राह्मसमाज और प्रार्थनासमाज

(प्रश्न) ब्राह्मसमाज और प्रार्थनासमाज तो अच्छा है वा नहीं?

(उत्तर) कुछ-कुछ बातें अच्छी और बहुत सी बुरी हैं।

(प्रश्न) ब्राह्मसमाज और प्रार्थनासमाज सब से अच्छा है क्योंकि इस के नियम बहुत अच्छे हैं।

(उत्तर) नियम सर्वांश में अच्छे नहीं क्योंकि वेदविद्याहीन लोगों की कल्पना सर्वथा सत्य क्योंकर हो सकती है? जो कुछ ब्राह्मसमाज और प्रार्थनासमाजियों ने ईसाई मत में मिलने से थोड़े मनुष्यों को बचाये और कुछ-कुछ पाषाणादि मूर्त्तिपूजा को हटाया अन्य जाल ग्रन्थों के फन्द से भी कुछ बचाये इत्यादि अच्छी बातें हैं।

१-परन्तु इन लोगों में **स्वदेशभक्ति बहुत न्यून** है। ईसाइयों के आचरण बहुत से ले लिये हैं। खानपान विवाहादि के नियम भी बदल दिये हैं।

२-**अपने देश की प्रशंसा वा पूर्वजों की बड़ाई करनी तो दूर उस के स्थान में पेट भर निन्दा करते हैं। व्याख्यानों में ईसाई आदि अंगरेजों की प्रशंसा भरपेट करते हैं।** ब्रह्मादि महर्षियों का नाम भी नहीं लेते प्रत्युत ऐसा कहते हैं कि **विना अंगरेजों के सृष्टि में आज पर्यन्त कोई भी विद्वान् नहीं हुआ। आर्य्यावर्त्ती लोग सदा से मूर्ख चले आये हैं। इन की उन्नति कभी नहीं हुई।**

३-वेदादिकों की प्रतिष्ठा तो दूर रही परन्तु निन्दा करने से भी पृथक् नहीं रहते। ब्राह्मसमाज के उद्देश्य के पुस्तक में **साधुओं की संख्या में 'ईसा', 'मूसा', 'मुहम्मद', 'नानक' और 'चैतन्य' लिखे हैं। किसी ऋषि महर्षि का नाम भी नहीं लिखा।** इस से जाना जाता है कि इन लोगों ने जिन का नाम लिखा है उन्हीं के मतानुसारी मत वाले हैं। **भला ! जब आर्य्यावर्त्त में उत्पन्न हुए हैं और इसी देश का अन्न जल खाया पिया, अब भी खाते पीते हैं। अपने माता, पिता, पितामहादि के मार्ग को छोड़ दूसरे विदेशी मतों पर अधिक झुक जाना, ब्राह्मसमाजी और प्रार्थनासमाजियों का एतद्देशस्थ संस्कृत विद्या से रहित अपने को विद्वान् प्रकाशित करना, इंगलिश भाषा पढ़के पण्डिताभिमानी होकर झटिति एक मत चलाने में प्रवृत्त होना, मनुष्यों का स्थिर और वृद्धिकारक काम क्योंकर हो सकता है?**

४-अंगरेज, यवन, अन्त्यजादि से भी खाने का भेद नहीं रक्खा। इन्होंने यही समझा होगा कि खाने पीने और जातिभेद तोड़ने से हम और हमारा देश सुधर जायेगा परन्तु ऐसी बातों से सुधार तो कहां है, उल्टा बिगाड़ होता है।

५-**(प्रश्न)** जातिभेद ईश्वरकृत है वा मनुष्यकृत?

(उत्तर) ईश्वरकृत और मनुष्यकृत भी जातिभेद है।

(प्रश्न) कौन से ईश्वरकृत और कौन से मनुष्यकृत?

(उत्तर) मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष, जलजन्तु आदि जातियां परमेश्वरकृत हैं। जैसे पशुओं में गौ, अश्व, हस्ति आदि जातियां, वृक्षों में पीपल, वट, आम्र आदि; पक्षियों में हंस, काक, वकादि; जलजन्तुओं में मत्स्य, मकरादि जातिभेद हैं। वैसे मनुष्यों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, अन्त्यज जातिभेद हैं; ईश्वरकृत हैं परन्तु

मनुष्यों में ब्राह्मणादि को सामान्य जाति में नहीं किन्तु सामान्य विशेषात्मक जाति में गिनते हैं। जैसे पूर्व वर्णाश्रमव्यवस्था में लिख आये वैसे ही गुण, कर्म, स्वभाव से वर्णव्यवस्था माननी अवश्य हैं। इसमें मनुष्यकृतत्व उनके गुण, कर्म, स्वभाव से पूर्वोक्तानुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रादि वर्णों की परीक्षापूर्वक व्यवस्था करनी राजा और विद्वानों का काम है। भोजनभेद भी ईश्वरकृत और मनुष्यकृत भी है। जैसे सिंह मांसाहारी और अर्णाभैंसा घासादि का आहार करते हैं यह ईश्वरकृत और देशकाल वस्तु भेद से भोजनभेद मनुष्यकृत है।

देखो! यूरोपियन लोग मुंडे जूते, कोट पतलून पहरते, होटल में सब के हाथ का खाते हैं इसीलिए अपनी बढ़ती करते जाते हैं।

(उत्तर) यह तुम्हारी भूल है क्योंकि मुसलमान अन्त्यज लोग सब के हाथ का खाते हैं पुनः उन की उन्नति क्यों नहीं होती? जो यूरोपियनों में बाल्यावस्था में विवाह न करना, लड़का-लड़की को विद्या सुशिक्षा करना कराना, स्वयंवर विवाह होना, बुरे-बुरे आदमियों का उपदेश नहीं होता। वे विद्वान् होकर जिस किसी के पाखण्ड में नहीं फंसते, जो कुछ करते हैं वह सब परस्पर विचार और सभा से निश्चित करके करते हैं। अपनी स्वजाति की उन्नति के लिये तन, मन, धन व्यय करते हैं। आलस्य को छोड़ उद्योग किया करते हैं।

देखो ! अपने देश के बने हुए जूते को कार्यालय (आफिस) और कचहरी में जाने देते हैं इस देशी जूते को नहीं। इतने ही में समझ लेओ कि अपने देश के बने जूतों का भी कितना मान प्रतिष्ठा करते हैं, उतना भी अन्य देशस्थ मनुष्यों का नहीं करते। देखो ! कुछ सौ वर्ष से ऊपर इस देश में आये यूरोपियनों को हुए और आज तक ये लोग मोटे कपड़े आदि पहिरते हैं जैसा कि स्वदेश में पहिरते थे परन्तु **उन्होंने अपने देश का चाल चलन नहीं छोड़ा और तुम में से बहुत से लोगों ने उनका अनुकरण कर लिया। इसी से तुम निर्बुद्धि और वे बुद्धिमान् ठहरते हैं।** अनुकरण का करना किसी बुद्धिमान् का काम नहीं। और जो जिस काम पर रहता है उस को यथोचित करता है। आज्ञानुवर्ती बराबर रहते हैं। अपने देशवालों को व्यापार आदि में सहाय देते हैं; इत्यादि गुणों और अच्छे-अच्छे कर्मों से उन की उन्नति है। मुण्डे जूते, कोट, पतलून, होटल में खाने पीने आदि साधारण और बुरे कामों से नहीं बढ़े हैं। और इन में जातिभेद भी है। देखो ! जब कोई यूरोपियन चाहै कितने बड़े अधिकार पर और प्रतिष्ठित हो किसी अन्य देश अन्य मत वालों की लड़की वा यूरोपियन की लड़की अन्य देशवाले से विवाह कर लेती है तो उसी समय उस का निमन्त्रण, साथ बैठ कर खाने और विवाह आदि को अन्य लोग बंध कर देते हैं। यह जातिभेद नहीं तो क्या है? और तुम भोले भालों को बहकाते हैं कि हम में जातिभेद नहीं। तुम अपनी मूर्खता से मान भी लेते हो। इसलिये जो कुछ करना वह सोच-विचार कर करना चाहिये जिसमें पुनः पश्चात्ताप करना न पड़े।

देखो! वैद्य और औषध की आवश्यकता रोगी के लिए है; नीरोग के लिये नहीं। विद्यावान् नीरोग और विद्यारहित अविद्यारोग से ग्रस्त रहता है। उस रोग के छुड़ाने के लिये सत्य विद्या और सत्योपदेश है। उन को अविद्या से यह रोग है कि खाने पीने ही में धर्म्म रहता और जाता है। जब किसी को खाने पीने में अनाचार करता देखते हैं तब कहते और जानते हैं कि वह धर्म्मभ्रष्ट हो गया। उस की बात

न सुनते और न उस के पास बैठते, न उस को अपने पास बैठने देते।

अब कहिये कि तुम्हारी विद्या स्वार्थ के लिये है अथवा परमार्थ के लिये। परमार्थ तो तभी होता कि जब तुम्हारी विद्या से उन अज्ञानियों को लाभ पहुंचता। जो कहो कि वे नहीं लेते हम क्या करें? यह तुम्हारा दोष है उन का नहीं। क्योंकि तुम जो अपना आचरण अच्छा रखते तो तुम से प्रेम कर वे उपकृत होते, सो तुम ने सहस्रों का उपकार-नाश करके अपना ही सुख किया सो यह तुम को बड़ा अपराध लगा, क्योंकि **परोपकार करना धर्म्म और परहानि करना अधर्म्म कहाता है। इसलिए विद्वान् को यथायोग्य व्यवहार करके अज्ञानियों को दुःखसागर से तारने के लिये नौकारूप होना चाहिये। सर्वथा मूर्खों के सदृश कर्म न करने चाहिए किन्तु जिस में उन की और अपनी दिन प्रतिदिन उन्नति हो वैसे कर्म करने उचित हैं।**

(प्रश्न) हम कोई पुस्तक ईश्वरप्रणीत वा सर्वांश सत्य नहीं मानते क्योंकि मनुष्यों की बुद्धि निर्भ्रान्त नहीं होती, इस से उन के बनाये ग्रन्थ सब भ्रान्त होते हैं। इसलिये हम सब से सत्य ग्रहण करते और असत्य को छोड़ देते हैं। चाहे सत्य वेद में, बाइबिल में वा कुरान में और अन्य किसी ग्रन्थ में हो; हम को ग्राह्य है; असत्य किसी का नहीं।

(उत्तर) जिस बात से तुम सत्यग्राही होना चाहते हो उसी बात से असत्यग्राही भी ठहरते हो क्योंकि जब सब मनुष्य भ्रान्तिरहित नहीं हो सकते तो तुम भी मनुष्य होने से भ्रान्तिसहित हो। जब भ्रान्तिसहित के वचन सर्वांश में प्रामाणिक नहीं होते तो तुम्हारे वचन का भी विश्वास नहीं होगा। फिर तुम्हारे वचन पर भी सर्वथा विश्वास न करना चाहिये। जब ऐसा है तो विषयुक्त अन्न के समान त्याग के योग्य हैं। फिर तुम्हारे व्याख्यान पुस्तक बनाये का प्रमाण किसी को भी न करना चाहिये। **'चले तो चौबे जी छब्बे जी बनने को, गांठ के दो खोकर दुबे जी बन गये।'** कुछ तुम सर्वज्ञ नहीं जैसे कि अन्य मनुष्य सर्वज्ञ नहीं हैं। कदाचित् भ्रम से असत्य को ग्रहण कर सत्य को छोड़ भी देते होगे। इसलिये सर्वज्ञ परमात्मा के वचन का सहाय हम अल्पज्ञों को अवश्य होना चाहिए।

जैसा कि वेद के व्याख्यान में लिख आये हैं वैसा तुम को अवश्य ही मानना चाहिए। नहीं तो **'यतो भ्रष्टस्ततो भ्रष्टः'** हो जाना है। जब सर्व सत्य वेदों से प्राप्त होता है, जिन में असत्य कुछ भी नहीं तो उनका ग्रहण करने में शंका करनी अपनी और पराई हानिमात्र कर लेनी है। इसी बात से तुम को आर्य्यावर्त्तीय लोग अपने नहीं समझते और तुम आर्य्यावर्त्त की उन्नति के कारण भी नहीं हो सके क्योंकि तुम सब घर के भिक्षुक ठहरे। तुम ने समझा है कि इस बात से हम लोग अपना और पराया उपकार कर सकेंगे सो न कर सकोगे। जैसे किसी के दो ही माता-पिता सब संसार के लड़कों का पालन करने लगें। सब का पालन करना तो असम्भव है किन्तु उस बात से अपने लड़कों को भी नष्ट कर बैठें, वैसे ही आप लोगों की गति है। भला! वेदादि सत्य शास्त्रों को माने विना तुम अपने वचनों की सत्यता और असत्यता की परीक्षा और आर्य्यावर्त्त की उन्नति भी कभी कर सकते हो?

जिस देश को रोग हुआ है उस की औषधि तुम्हारे पास नहीं और यूरोपियन लोग तुम्हारी अपेक्षा नहीं करते और आर्य्यावर्त्तीय लोग तुम को अन्य मतियों के

सदृश समझते हैं। अब भी समझ कर वेदादि के मान्य से देशोन्नति करने लगो तो भी अच्छा है। जो तुम यह कहते हो कि सब सत्य परमेश्वर से प्रकाशित होता है पुनः ऋषियों के आत्माओं में ईश्वर से प्रकाशित हुए सत्यार्थ वेदों को क्यों नहीं मानते? हां ! यही कारण है कि तुम लोग वेद नहीं पढ़े और न पढ़ने की इच्छा करते हो। क्योंकर तुम को वेदोक्त ज्ञान हो सकेगा?

६—दूसरा जगत् के उपादान कारण के विना जगत् की उत्पत्ति और जीव को भी उत्पन्न मानते हो, जैसा ईसाई और मुसलमान आदि मानते हैं। इस का उत्तर सृष्ट्युत्पत्ति और जीवेश्वर की व्याख्या में देख लीजिए। कारण के विना कार्य का होना सर्वथा असम्भव और उत्पन्न वस्तु का नाश न होना भी वैसा ही असम्भव है।

७—एक यह भी तुम्हारा दोष है जो पश्चात्ताप और प्रार्थना से पापों की निवृत्ति मानते हो। इसी बात से जगत् में बहुत से पाप बढ़ गये हैं। क्योंकि पुराणी लोग तीर्थादि यात्रा से, जैनी लोग भी नवकार मन्त्र जप और तीर्थादि से; ईसाई लोग ईसा के विश्वास से; मुसलमान लोग 'तोबाः' करने से पाप का छूट जाना विना भोग के मानते हैं। इस से पापों से भय न होकर पाप में प्रवृत्ति बहुत हो गई है। इस बात में ब्राह्म और प्रार्थनासमाजी भी पुराणी आदि के समान हैं। जो वेदों को सुनते तो विना भोग के पाप पुण्य की निवृत्ति न होने से पापों से डरते और धर्म में सदा प्रवृत्त रहते। जो भोग के विना निवृत्ति मानें तो ईश्वर अन्यायकारी होता है।

८—जो तुम जीव की अनन्त उन्नति मानते हो सो कभी नहीं हो सकती क्योंकि ससीम जीव के गुण, कर्म, स्वभाव का फल भी ससीम होना अवश्य है।

(प्रश्न) परमेश्वर दयालु है। ससीम कर्मों का फल अनन्त दे देगा।

(उत्तर) ऐसा करे तो परमेश्वर का न्याय नष्ट हो जाय और सत्कर्मों की उन्नति भी कोई न करेगा। क्योंकि थोड़े से भी सत्कर्म का अनन्त फल परमेश्वर दे देगा और पश्चात्ताप वा प्रार्थना से पाप चाहें जितने हों छूट जायेंगे। ऐसी बातों से धर्म की हानि और पापकर्मों की वृद्धि होती है।

(प्रश्न) हम स्वाभाविक ज्ञान को वेद से बड़ा मानते हैं; नैमित्तिक को नहीं। क्योंकि जो स्वाभाविक ज्ञान परमेश्वरदत्त हम में न होता तो वेदों को भी कैसे पढ़ पढ़ा, समझ समझा सकते। इसलिए हम लोगों का मत बहुत अच्छा है।

(उत्तर) यह तुम्हारी बात निरर्थक है। क्योंकि जो किसी का दिया हुआ ज्ञान होता है वह स्वाभाविक नहीं होता। जो स्वाभाविक है वह सहज ज्ञान होता है और न वह बढ़ घट सकता। उस से उन्नति कोई भी नहीं कर सकता। क्योंकि जंगली मनुष्यों में भी स्वाभाविक ज्ञान है तो भी वे अपनी उन्नति नहीं कर सकते? और जो नैमित्तिक ज्ञान है वही उन्नति का कारण है। देखो! तुम हम बाल्यावस्था में कर्त्तव्याकर्त्तव्य और धर्माधर्म कुछ भी ठीक-ठीक नहीं जानते थे। जब हम विद्वानों से पढ़े तभी कर्त्तव्याकर्त्तव्य और धर्माधर्म को समझने लगे। इसलिए स्वाभाविक ज्ञान को सर्वोपरि मानना ठीक नहीं।

९—जो आप लोगों ने पूर्व और पुनर्जन्म नहीं माना है वह ईसाई मुसलमानों से लिया होगा। इस का भी उत्तर पुनर्जन्म की व्याख्या से समझ लेना। परन्तु इतना समझो कि **जीव शाश्वत अर्थात् नित्य है और उस के कर्म भी प्रवाहरूप से**

नित्य हैं। कर्म और कर्मवान् का नित्य सम्बन्ध होता है। क्या वह जीव कहीं निकम्मा बैठा रहा था? वा रहेगा? और परमेश्वर भी निकम्मा तुम्हारे कहने से होता है पूर्वापर जन्म न मानने से कृतहानि और **अकृताभ्यागम, नैर्घृण्य** और **वैषम्य** दोष भी ईश्वर में आते हैं, क्योंकि जन्म न हो तो पाप पुण्य के फल–भोग की हानि हो जाय। क्योंकि जिस प्रकार दूसरे को सुख, दुःख, हानि, लाभ पहुँचाया होता है वैसा उस का फल विना शरीर धारण किये नहीं होता। दूसरा पूर्वजन्म के पाप पुण्यों के विना सुख, दुःख की प्राप्ति इस जन्म में क्योंकर होवे? जो पूर्वजन्म के पाप पुण्यानुसार न होवे तो परमेश्वर अन्यायकारी और विना भोग किये नाश के समान कर्म का फल हो जावे इसलिए यह भी बात आप लोगों की अच्छी नहीं।

१०–और एक यह कि ईश्वर के विना दिव्य गुणवाले पदार्थों और विद्वानों को भी देव न मानना ठीक नहीं क्योंकि परमेश्वर महादेव और देव न होता तो सब देवों का स्वामी होने से महादेव क्यों कहाता?

११–एक अग्निहोत्रादि परोपकारक कर्मों को कर्त्तव्य न समझना अच्छा नहीं।

१२–ऋषि महर्षियों के किये उपकारों को न मानकर ईसा आदि के पीछे झुक पड़ना अच्छा नहीं।

१३–और विना कारणविद्या वेदों के अन्य कार्यविद्याओं की प्रवृत्ति मानना सर्वथा असम्भव है।

१४–और जो विद्या का चिह्न यज्ञोपवीत और शिखा को छोड़ मुसलमान ईसाइयों के सदृश बन बैठना यह भी व्यर्थ है। जब पतलून आदि वस्त्र पहिरते हो और 'तमगों' की इच्छा करते हो तो क्या यज्ञोपवीत आदि का कुछ बड़ा भार हो गया था?

१५–और ब्रह्मा से लेकर पीछे–पीछे आर्यावर्त्त में बहुत से विद्वान् हो गये हैं। उन की प्रशंसा न करके यूरोपियन ही की स्तुति में उतर पड़ना पक्षपात और खुशामद के विना क्या कहा जाए?

१६–और बीजांकुर के समान जड़चेतन के योग से जीवोत्पत्ति मानना, उत्पत्ति के पूर्व जीवतत्त्व का न मानना और उत्पन्न का न नाश मानना पूर्वापर विरुद्ध है। जो उत्पत्ति के पूर्व चेतन और जड़ वस्तु न था तो जीव कहां से आया और संयोग किन का हुआ? जो इन दोनों को सनातन मानते हो तो ठीक है परन्तु सृष्टि के पूर्व ईश्वर के विना दूसरे किसी तत्त्व को न मानना यह आपका पक्ष व्यर्थ हो जायेगा। **इसलिये जो उन्नति करना चाहो तो 'आर्य्यसमाज' के साथ मिलकर उस के उद्देश्यानुसार आचरण करना स्वीकार कीजिये, नहीं तो कुछ हाथ न लगेगा। क्योंकि हम और आपको अति उचित है कि जिस देश के पदार्थों से अपना शरीर बना; अब भी पालन होता है; आगे होगा; उसकी उन्नति तन, मन, धन से सब जने मिलकर प्रीति से करें। इसलिए जैसा आर्य्यसमाज आर्य्यावर्त्त देश की उन्नति का कारण है वैसा दूसरा नहीं हो सकता।** यदि इस समाज को यथावत् सहायता देवें तो बहुत अच्छी बात है, क्योंकि समाज का सौभाग्य बढ़ाना समुदाय का काम है; एक का नहीं।

(प्रश्न) आप सब का खण्डन करते ही आते हो परन्तु अपने–अपने धर्म में सब अच्छे हैं। खण्डन किसी का न करना चाहिए। जो करते हो तो आप

इन से विशेष क्या बतलाते हो। जो बतलाते हो तो क्या आप से अधिक वा तुल्य कोई पुरुष न था? और न है? ऐसा अभिमान करना आप को उचित नहीं, क्योंकि परमात्मा की सृष्टि में एक-एक से अधिक, तुल्य और न्यून बहुत हैं। किसी को घमण्ड करना उचित नहीं?

(उत्तर) धर्म सब का एक होता है वा अनेक? जो कहो अनेक होते हैं तो एक दूसरे के विरुद्ध होते हैं वा अविरुद्ध? जो कहो कि विरुद्ध होते हैं तो एक के विना दूसरा धर्म नहीं हो सकता और जो कहो कि अविरुद्ध हैं तो पृथक्-पृथक् होना व्यर्थ है। इसलिए धर्म और अधर्म एक ही हैं; अनेक नहीं। यही हम विशेष कहते हैं कि जैसे सब सम्प्रदायों के उपदेशकों को कोई राजा इकट्ठा करे तो एक सहस्र से कम नहीं होंगे परन्तु इन का मुख्य भाग देखो तो पुरानी, किरानी, जैनी और कुरानी चार ही हैं। क्योंकि इन चारों में सब सम्प्रदाय आ जाते हैं। कोई राजा उन की सभा करके वा कोई जिज्ञासु होकर प्रथम वाममार्गी से पूछे—हे महाराज! मैंने आज तक न कोई गुरु और न किसी धर्म का ग्रहण किया है। कहिये ! सब धर्मों में से उत्तम धर्म किस का है? जिस को मैं ग्रहण करूं?

(वाममार्गी) हमारा है। **(जिज्ञासु)** ये नौ सौ निन्यानवे कैसे हैं?

(वाममार्गी) सब झूठे और नरकगामी हैं क्योंकि **'कौलात्परतरं नहि'**। इस वचन के प्रमाण से हमारे धर्म से परे कोई धर्म नहीं है। **(जिज्ञासु)** आप का क्या धर्म है?

(वाममार्गी) भगवती का मानना, मद्य-मांसादि पंच मकारों का सेवन और रुद्रयामल आदि चौसठ तन्त्रों का मानना इत्यादि, जो तू मुक्ति की इच्छा करता है तो हमारा चेला हो जा।

(जिज्ञासु) अच्छा! परन्तु और महात्माओं का भी दर्शन कर पूछपाछ आऊँगा। पश्चात् जिस में मेरी श्रद्धा और प्रीति होगी उस का चेला हो जाऊँगा।

(वाममार्गी) अरे! क्यों भ्रान्ति में पड़ा है। ये लोग तुझ को बहका कर अपने जाल में फंसा देंगे। किसी के पास मत जावे। हमारे ही शरणागत हो जा नहीं तो पछतावेगा। देख! हमारे मत में भोग और मोक्ष दोनों हैं।

(जिज्ञासु) अच्छा देख तो आऊँ। आगे चलकर शैव के पास जाके पूछा तो ऐसा ही उत्तर उस ने दिया। इतना विशेष कहा कि विना शिव, रुद्राक्ष, भस्म-धारण और लिङ्गार्चन के मुक्ति कभी नहीं होती। वह उसको छोड़ नवीन वेदान्ती जी के पास गया।

(जिज्ञासु) कहो महाराज! आप का धर्म क्या है?

(वेदान्ती) हम धर्माऽधर्म कुछ भी नहीं मानते। हम साक्षात् ब्रह्म हैं। हम में धर्माऽधर्म कहां है? यह जगत् सब मिथ्या है। और जो ज्ञानी शुद्ध चेतन हुआ चाहै तो अपने को ब्रह्म मान; जीवभाव को छोड़; नित्यमुक्त हो जायेगा।

(जिज्ञासु) जो तुम ब्रह्म नित्यमुक्त हो तो ब्रह्म के गुण, कर्म, स्वभाव तुम में क्यों नहीं? और शरीर में क्यों बंधे हो?

(वेदान्ती) तुझ को शरीर दीखते हैं इसी से तू भ्रान्त है। हम को कुछ नहीं दीखता; विना ब्रह्म के।

(जिज्ञासु) तुम देखने वाले कौन और किसको देखते हो?

(वेदान्ती) देखनेवाला ब्रह्म और ब्रह्म को ब्रह्म देखता है।

(जिज्ञासु) क्या दो ब्रह्म हैं?

(वेदान्ती) नहीं। अपने आप को देखता है।

(जिज्ञासु) क्या कोई अपने कन्धे पर आप चढ़ सकता है? तुम्हारी बात कुछ नहीं केवल पागलपने की है। उस ने आगे चलकर जैनियों के पास जाकर पूछा। उन्होंने भी वैसा ही कहा परन्तु इतना विशेष कहा कि 'जिणधर्म्म' के विना सब धर्म खोटा। जगत् का कर्त्ता अनादि ईश्वर कोई नहीं। जगत् अनादि काल से जैसा का वैसा बना है और बना रहेगा। आ तू हमारा चेला हो जा। क्योंकि हम सम्यक्त्वी अर्थात् सब प्रकार से अच्छे हैं। उत्तम बातों को मानते हैं। जैन मार्ग से भिन्न सब मिथ्यात्वी हैं।

आगे चल के ईसाई से पूछा। उसने वाममार्गी के तुल्य सब जवाब सवाल किये। इतना विशेष बतलाया 'सब मनुष्य पापी हैं, अपने सामर्थ्य से पाप नहीं छूटता। विना ईसा पर विश्वास के पवित्र होकर मुक्ति को नहीं पा सकता। ईसा ने सब के प्रायश्चित्त के लिए अपने प्राण देकर दया प्रकाशित की है। तू हमारा ही चेला हो जा।'

जिज्ञासु सुनकर मौलवी साहब के पास गया। उन से भी ऐसे ही जवाब सवाल हुए। इतना विशेष कहा—'लाशरीक' खुदा उस के पैगम्बर और कुरानशरीफ के विना माने कोई निजात नहीं पा सकता। जो इस मजहब को नहीं मानता वह दोजखी और काफिर है वाजिबुल्कत्ल है।

जिज्ञासु सुनकर वैष्णव के पास गया। वैसा ही संवाद हुआ। इतना विशेष कहा कि 'हमारे तिलक छापे देखकर यमराज डरता है।' जिज्ञासु ने मन में समझा कि जब मच्छर, मक्खी, पुलिस के सिपाही, चोर, डाकू और शत्रु नहीं डरते तो यमराज के गण क्यों डरेंगे?

फिर आगे चला तो सब मतवालों ने अपने-अपने को सच्चा कहा। कोई हमारा कबीर सच्चा, कोई नानक, कोई दादू, कोई वल्लभ, कोई सहजानन्द, कोई माध्व आदि को बड़ा और अवतार बतलाते सुना। सहस्र से पूछ उन के परस्पर एक दूसरे का विरोध देख, विशेष निश्चय किया कि इन में कोई गुरु करने योग्य नहीं। क्योंकि एक-एक की भूठ में नौ सौ निन्यानवे गवाह हो गये। जैसे झूठे दुकानदार वा वेश्या और भडुवा आदि अपनी-अपनी वस्तु की बड़ाई दूसरे की बुराई करते हैं वैसे ही ये हैं। ऐसा जान—

तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् ।
समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्॥१॥
तस्मै स विद्वानुपसन्नाय सम्यक्प्रशान्तचित्ताय शमान्विताय ।
येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं प्रोवाच तां तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम्॥२॥

उपनिषद्

उस सत्य के विज्ञानार्थ वह **समित्पाणि** अर्थात् हाथ जोड़ अरिक्तहस्त होकर वेदवित् ब्रह्मनिष्ठ परमात्मा को जाननेहारे गुरु के पास जावे। इन पाखण्डियों के जाल में न गिरे॥ १॥

जब ऐसा जिज्ञासु विद्वान् के पास जाय, उस शान्तचित्त जितेन्द्रिय समीप प्राप्त जिज्ञासु को यथार्थ ब्रह्मविद्या परमात्मा के गुण, कर्म, स्वभाव का उपदेश करे और जिस-जिस साधन से वह श्रोता धर्मार्थ, काम, मोक्ष और परमात्मा को जान

सके वैसी शिक्षा किया करे॥ २॥

जब वह ऐसे पुरुष के पास जाकर बोला कि महाराज अब इन सम्प्रदायों के बखेड़ों से मेरा चित्त भ्रान्त हो गया क्योंकि जो मैं इन में से किसी एक का चेला होऊंगा तो नौ सौ निन्न्यानवे से विरोधी होना पड़ेगा। जिस के नौ सौ निन्न्यानवे शत्रु और एक मित्र है उस को सुख कभी नहीं हो सकता। इसलिए आप मुझ को उपदेश कीजिये जिस को मैं ग्रहण करूं।

आप्तविद्वान्—ये सब मत अविद्याजन्य विद्याविरोधी हैं। मूर्ख, पामर और जंगली मनुष्य को बहकाकर अपने जाल में फंसा के अपना प्रयोजन सिद्ध करते हैं। वे विचारे अपने मनुष्यजन्म के फल से रहित होकर अपना मनुष्यजन्म व्यर्थ गमाते हैं। देख! जिस बात में ये सहस्र एकमत हों वह वेदमत ग्राह्य है और जिस में परस्पर विरोध हो वह कल्पित, झूठा, अधर्म, अग्राह्य है।

(जिज्ञासु) इसकी परीक्षा कैसे हो?

(आप्त) तू जाकर इन-इन बातों को पूछ। सब की एक सम्मति हो जायगी। तब वह उन सहस्र की मण्डली के बीच में खड़ा होकर बोला कि सुनो सब लोगो! सत्यभाषण में धर्म है वा मिथ्या में? सब एक स्वर होकर बोले कि सत्यभाषण में धर्म और असत्यभाषण में अधर्म है। वैसे ही विद्या पढ़ने, ब्रह्मचर्य करने, पूर्ण युवावस्था में विवाह, सत्संग, पुरुषार्थ, सत्य व्यवहार, आदि में धर्म और अविद्या ग्रहण, ब्रह्मचर्य न करने, व्यभिचार करने, कुसंग, आलस्य, असत्य व्यवहार, छल, कपट, हिंसा, परहानि करने आदि कर्म्मों में?

सब ने एक मत होके कहा कि विद्यादि के ग्रहण में धर्म और अविद्यादि के ग्रहण में अधर्म।

तब जिज्ञासु ने सब से कहा कि तुम इसी प्रकार सब जने एकमत हो सत्य-धर्म की उन्नति और मिथ्यामार्ग की हानि क्यों नहीं करते हो? वे सब बोले—जो हम ऐसा करें तो हम को कौन पूछे? हमारे चेले हमारी आज्ञा में न रहैं। जीविका नष्ट हो जाय। फिर जो हम आनन्द कर रहे हैं सो सब हाथ से जाय। इसलिये हम जानते हैं तो भी अपने-अपने मत का उपदेश और आग्रह करते ही जाते हैं क्योंकि **'रोटी खाइये शक्कर से और दुनिया ठगिये मक्कर से'** ऐसी बात है। देखो! संसार में सूधे सच्चे मनुष्य को कोई नहीं देता और न पूछता। जो कुछ ढोंगबाजी और धूर्त्तता करता है वही पदार्थ पाता है।

(जिज्ञासु) जो तुम ऐसा पाखण्ड चलाकर अन्य मनुष्यों को ठगते हो तुम को राजा दण्ड क्यों नहीं देता?

(मत वाले) हम ने राजा को भी अपना चेला बना लिया है। हम ने पक्का प्रबन्ध किया है; छूटेगा नहीं।

(जिज्ञासु) जब तुम छल से अन्य मतस्थ मनुष्यों को ठग उन की हानि करते हो परमेश्वर के सामने क्या उत्तर दोगे? और घोर नरक में पड़ोगे। थोड़े जीवन के लिए इतना बड़ा अपराध करना क्यों नहीं छोड़ते?

(मत वाले) जब जैसा होगा तब देखा जाएगा। नरक और परमेश्वर का दण्ड जब होगा तब होगा अब तो आनन्द करते हैं। हम को प्रसन्नता से धनादि पदार्थ देते हैं कुछ बलात्कार से नहीं लेते फिर राजा दण्ड क्यों देवे?

(जिज्ञासु) जैसे कोई छोटे बालक को फुसला के धनादि पदार्थ हर लेता

है जैसे उस को दण्ड मिलता है वैसे तुम को क्यों नहीं मिलता? क्योंकि—

अज्ञो भवति वै बालः पिता भवति मन्त्रदः॥ —मनु० ॥

जो ज्ञानरहित होता है वह बालक और जो ज्ञान का देने वाला है वह पिता और वृद्ध कहाता है। जो बुद्धिमान् विद्वान् है वह तो तुम्हारी बातों में नहीं फंसता किन्तु अज्ञानी लोग जो बालक के सदृश हैं उन को ठगने में तुम को राजदण्ड अवश्य होना चहिए।

(मत वाले) जब राजा प्रजा सब हमारे मत में हैं तो हम को दण्ड कौन देने वाला है? जब ऐसी व्यवस्था होगी तब इन बातों को छोड़ कर दूसरी व्यवस्था करेंगे।

(जिज्ञासु) जो तुम बैठे-बैठे व्यर्थ माल मारते हो सो विद्याभ्यास कर गृहस्थों के लड़के लड़कियों को पढ़ाओ तो तुम्हारा और गृहस्थों का कल्याण हो जाय।

(मत वाले) जब हम बाल्यावस्था से लेकर मरण तक के सुखों को छोड़ें; बाल्यावस्था से युवावस्था पर्यन्त विद्या पढ़ने में रहें; पश्चात् पढ़ाने में और उपदेश करने में जन्म भर परिश्रम करें, हम को क्या प्रयोजन? हम को ऐसे ही लाखों रुपये मिल जाते हैं, चैन करते हैं। उस को क्यों छोड़ें?

(जिज्ञासु) इस का परिणाम तो बुरा है। देखो, तुम को बड़े रोग होते हैं। शीघ्र मर जाते हो। बुद्धिमानों में निन्दित होते हो। फिर भी क्यों नहीं समझते?

(मत वाले) अरे भाई!

टका धर्मष्टका कर्म टका हि परमं पदम् ।
यस्य गृहे टका नास्ति हा ! टकां टकटकायते॥१॥
आना अंशकलाः प्रोक्ताः रूप्योऽसौ भगवान् स्वयम् ।
अतस्तं सर्व इच्छन्ति रूप्यं हि गुणवत्तमम्॥२॥

तू लड़का है संसार की बातें नहीं जानता। देख! टका के विना धर्म, टका के विना कर्म, टका के विना परमपद नहीं होता। जिस के घर में टका नहीं है वह हाय! टका-टका करता-करता उत्तम पदार्थों को टक-टक देखता रहता है कि हाय ! मेरे पास टका होता तो इस उत्तम पदार्थ को मैं भोगता॥ १॥ क्योंकि सब कोई सोलह कलायुक्त अदृश्य भगवान् का कथन श्रवण करते हैं सो तो नहीं दीखता, परन्तु सोलह आने और पैसे कौड़ीरूप अंश कलायुक्त जो रुपैया है वही साक्षात् भगवान् है। इसीलिए सब कोई रुपयों की खोज में लगे रहते हैं, क्योंकि सब काम रुपयों से सिद्ध होते हैं॥ २॥

(जिज्ञासु) ठीक है। तुम्हारी भीतर की लीला बाहर आ गई। तुम ने जितना यह पाखण्ड खड़ा किया है वह सब अपने सुख के लिए किया है परन्तु इस में जगत् का नाश होता है। क्योंकि जैसा सत्योपदेश से संसार को लाभ पहुँचता है वैसी ही असत्योपदेश से हानि होती है। जब तुम को धन का ही प्रयोजन था तो नौकरी और व्यापारादि कर्म करके धन इकट्ठा क्यों नहीं कर लेते हो?

(मत वाले) उस में परिश्रम अधिक और हानि भी हो जाती है परन्तु इस हमारी लीला में हानि कभी नहीं होती किन्तु सर्वदा लाभ ही लाभ होता है। देखो! तुलसीदल डाल के चरणामृत दे, कण्ठी बांध देते, चेला मूड़ने से जन्मभर को पशुवत् हो जाता है। फिर चाहैं जैसे चलावें; चल सकता है।

(जिज्ञासु) ये लोग तुमको बहुत सा धन किस लिये देते हैं?

(मत वाले) धर्म, स्वर्ग और मुक्ति के अर्थ।

(जिज्ञासु) जब तुम ही मुक्त नहीं और न मुक्ति का स्वरूप वा साधन जानते हो तो तुम्हारी सेवा करने वालों को क्या मिलेगा?

(मत वाले) क्या इस लोक में मिलता है? नहीं, किन्तु मरकर पश्चात् परलोक में मिलता है। जितना ये लोग हम को देते हैं और सेवा करते हैं वह सब इन लोगों को परलोक में मिल जाता है।

(जिज्ञासु) इन को तो दिया हुआ मिल जाता है वा नहीं। तुम लेने वालों को क्या मिलेगा? नरक वा अन्य कुछ?

(मत वाले) हम भजन करा करते हैं। इस का सुख हम को मिलेगा।

(जिज्ञासु) तुम्हारा भजन तो टका ही के लिये है। वे सब टके यहीं पड़े रहेंगे और जिस मांसपिण्ड को यहां पालते हो वह भी भस्म होकर यहीं रह जायेगा। जो तुम परमेश्वर का भजन करते होते तो तुम्हारा आत्मा भी पवित्र होता।

(मत वाले) क्या हम अशुद्ध हैं?

(जिज्ञासु) भीतर के बड़े मैले हो। **(मत वाले)** तुमने कैसे जाना?

(जिज्ञासु) तुम्हारे चाल चलन व्यवहार से। **(मत वाले)** महात्माओं का व्यवहार हाथी के दांत के समान होता है। जैसे हाथी के दांत खाने के भिन्न और दिखलाने के भिन्न होते हैं। वैसे ही भीतर से हम पवित्र हैं और बाहर से लीलामात्र करते हैं।

(जिज्ञासु) जो तुम भीतर से शुद्ध होते तो तुम्हारे बाहर के काम भी शुद्ध होते इसलिए भीतर भी मैले हो।

(मत वाले) हम चाहैं जैसे हों परन्तु हमारे चेले तो अच्छे हैं।

(जिज्ञासु) जैसे तुम गुरु हो वैसे तुम्हारे चेले भी होंगे।

(मत वाले) एक मत कभी नहीं हो सकता क्योंकि मनुष्यों के गुण, कर्म, स्वभाव भिन्न-भिन्न हैं।

(जिज्ञासु) जो बाल्यावस्था में एक सी शिक्षा हो, सत्यभाषणादि धर्म का ग्रहण और मिथ्याभाषणादि अधर्म का त्याग करें तो एकमत अवश्य हो जायें और दो मत अर्थात् धर्मात्मा और अधर्मात्मा सदा रहते हैं वे तो रहैं। परन्तु धर्मात्मा अधिक होने और अधर्मी न्यून होने से संसार में सुख बढ़ता है और जब अधर्मी अधिक होते हैं तब दुःख। जब सब विद्वान् एक सा उपदेश करें तो एकमत होने में कुछ भी विलम्ब न हो।

(मत वाले) आजकल कलियुग है सतयुग की बात मत चाहो।

(जिज्ञासु) कलियुग नाम काल का है। काल निष्क्रिय होने से कुछ धर्माधर्म के करने में साधक बाधक नहीं, किन्तु तुम ही कलियुग की मूर्त्तियां बन रहे हो। जो मनुष्य ही सत्ययुग कलियुग न हों तो कोई भी संसार में धर्मात्मा नहीं होता। ये सब सङ्ग के गुण दोष हैं; स्वाभाविक नहीं। इतना कहकर आप्त के पास गया। उन से कहा कि महाराज! तुम ने मेरा उद्धार किया, नहीं तो मैं भी किसी के जाल में फंसकर नष्ट-भ्रष्ट हो जाता। अब मैं भी इन पाखण्डियों का खण्डन और वेदोक्त सत्य मत का मण्डन किया करूँगा।

(आप्त) यही सब मनुष्यों का विशेष विद्वान् और संन्यासियों का काम

है कि सब मनुष्यों को सत्य का मण्डन और असत्य खण्डन पढ़ा सुना के सत्योपदेश से उपकार पहुंचाना चाहिये।

(प्रश्न) जो ब्रह्मचारी संन्यासी हैं वे तो ठीक हैं?

(उत्तर) ये आश्रम तो ठीक हैं परन्तु आजकल इन में भी बहुत सी गड़बड़ है। कितने ही नाम ब्रह्मचारी रखते हैं और झूठ-मूठ जटा बढ़ाकर सिद्धाई करते और जप पुरश्चरणादि में फंसे रहते हैं, विद्या पढ़ने का नाम नहीं लेते कि जिस हेतु से ब्रह्मचारी नाम होता है उस ब्रह्म अर्थात् वेद पढ़ने में परिश्रम कुछ भी नहीं करते। वे ब्रह्मचारी बकरी के गले के स्तन के सदृश निरर्थक हैं। और जो वैसे संन्यासी विद्याहीन, दण्ड कमण्डलु से भिक्षामात्र करते फिरते हैं, जो कुछ भी वेदमार्ग की उन्नति नहीं करते। छोटी अवस्था में संन्यास लेकर घूमा करते हैं और विद्याभ्यास को छोड़ देते हैं। ऐसे ब्रह्मचारी और संन्यासी इधर उधर जल, स्थल, पाषाणादि मूर्त्तियों का दर्शन, पूजन करते फिरते, विद्या जानकर भी मौन हो रहते। एकान्त देश में यथेष्ट खा पीकर सोते पड़े रहते हैं और ईर्ष्या द्वेष में फंसकर निन्दा कुचेष्टा करके निर्वाह करते । काषाय वस्त्र और दण्ड ग्रहणमात्र से अपने को कृतकृत्य समझते और सर्वोत्कृष्ट जानकर उत्तम काम नहीं करते, वैसे संन्यासी भी जगत् में व्यर्थ वास करते हैं। और जो सब जगत् का हित साधते हैं, वे ठीक हैं।

(प्रश्न) गिरी, पुरी, भारती आदि गुसाईं लोग तो अच्छे हैं? क्योंकि मण्डली बाँधकर इधर उधर घूमते हैं; सैकड़ों साधुओं को आनन्द कराते हैं और सर्वत्र अद्वैत मत का उपदेश करते हैं और कुछ-कुछ पढ़ते पढ़ाते भी हैं। इसलिये वे अच्छे होंगे।

(उत्तर) ये सब दश नाम पीछे से कल्पित किये गये हैं; सनातन नहीं। उन की मण्डलियाँ केवल भोजनार्थ हैं। बहुत से साधु भोजन ही के लिए मण्डलियों में रहते हैं। दम्भी भी हैं क्योंकि एक को महन्त बना सायंकाल में एक महन्त जो कि उन में प्रधान होता है वह गद्दी पर बैठ जाता है; सब ब्राह्मण और साधु खड़े होकर हाथ में पुष्प ले—

नारायणं पद्मभवं वसिष्ठं शक्तिं च तत्पुत्रपराशरं च ।
व्यासं शुकं गौडपदं महान्तम्॥

इत्यादि श्लोक पढ़ के हर-हर बोल उन के ऊपर पुष्प वर्षा कर साष्टाङ्ग नमस्कार करते हैं। जो कोई ऐसा न करे उस को वहां रहना भी कठिन है। यह दम्भ संसार को दिखलाने के लिए करते हैं जिससे जगत् में प्रतिष्ठा होकर माल मिले। कितने ही मठधारी गृहस्थ होकर भी संन्यास का अभिमानमात्र करते हैं; कर्म कुछ नहीं। संन्यास का वही कर्म है जो पांचवें समुल्लास में लिख आये हैं, उस को न करके व्यर्थ समय खोते हैं जो कोई अच्छा उपदेश करे उस के भी विरोधी होते हैं। बहुधा ये लोग, भस्म, रुद्राक्ष धारण करते और कोई-कोई शैव सम्प्रदाय का अभिमान रखते हैं । और जब कभी शास्त्रार्थ करते हैं तो अपने मत अर्थात् शङ्कराचार्योक्त का स्थापन और चक्राङ्कित आदि के खण्डन में प्रवृत्त रहते हैं। वेदमार्ग की उन्नति और यावत्पाखण्ड मार्ग हैं तावत् के खण्डन में प्रवृत्त नहीं होते।

ये संन्यासी लोग ऐसा समझते हैं कि हम को खण्डन मण्डन से क्या प्रयोजन? हम तो महात्मा हैं। ऐसे लोग भी संसार में भाररूप हैं। जब ऐसे हैं तभी तो वेदमार्गविरोधी वाममार्गादि सम्प्रदायी, ईसाई, मुसलमान, जैनी आदि बढ़ गये; अब

बढ़ते जाते हैं और इन का नाश होता जाता है तो भी इन की आंख नहीं खुलती! खुले कहाँ से? जो कुछ उन के मन में परोपकार बुद्धि और कर्त्तव्यकर्म करने में उत्साह होवे! किन्तु ये लोग अपनी प्रतिष्ठा खाने पीने के सामने अन्य अधिक कुछ भी नहीं समझते और संसार की निन्दा से बहुत डरते हैं। पुनः (लोकैषणा) लोक में प्रतिष्ठा (वित्तैषणा) धन बढ़ाने में तत्पर होकर विषयभोग (पुत्रैषणा) पुत्रवत् शिष्यों पर मोहित होना, इन तीन एषणाओं का त्याग करना उचित है। जब एषणा ही नहीं छूटी पुनः संन्यास क्योंकर हो सकता है? अर्थात् पक्षपातरहित वेदमार्गोपदेश से जगत् के कल्याण करने में अहर्निश प्रवृत्त रहना संन्यासियों का मुख्य काम है। जब अपने-अपने अधिकार कर्मों को नहीं करते पुनः संन्यासादि नाम धराना व्यर्थ है। नहीं तो जैसे गृहस्थ व्यवहार और स्वार्थ में परिश्रम करते हैं, उनसे अधिक परिश्रम परोपकार करने में संन्यासी भी तत्पर रहैं तभी सब आश्रम उन्नति पर रहैं।

देखो! तुम्हारे सामने पाखण्ड मत बढ़ते जाते हैं, ईसाई, मुसलमान तक होते जाते हैं। तनिक भी तुम से अपने घर की रक्षा और दूसरों का मिलाना नहीं बन सकता। बने तो तब जब तुम करना चाहो! जब लों वर्त्तमान और भविष्यत् में संन्यासी उन्नतिशील नहीं होते तब लों आर्य्यावर्त्त और अन्य देशस्थ मनुष्यों की वृद्धि नहीं होती। जब वृद्धि के कारण वेदादि सत्यशास्त्रों का पठनपाठन, ब्रह्मचर्य्य आदि आश्रमों के यथावत् अनुष्ठान सत्योपदेश होते हैं तभी देशोन्नति होती है।

चेत रक्खो! बहुत सी पाखण्ड की बातें तुम को सचमुच दीख पड़ती हैं। जैसे कोई साधु, दुकानदार पुत्रादि देने की सिद्धियां बतलाता है। तब उस के पास बहुत स्त्री जाती हैं और हाथ जोड़कर पुत्र मांगती हैं। और बाबा जी सब को पुत्र होने का आशीर्वाद देता है। उन में से जिस-जिस के पुत्र होता है वह-वह समझती हैं कि बाबा जी के वचन से ऐसा हुआ। जब उन से कोई पूछे कि सूअरी, कुत्ती, गधी और कुक्कुटी आदि के कच्चे बच्चे किस बाबा जी के वचन से होते हैं? तब कुछ भी उत्तर न दे सकेंगी! जो कोई कहे कि मैं लड़के को जीता रख सकता हूं तो आप ही क्यों मर जाता है?

कितने ही धूर्त्त लोग ऐसी माया रचते हैं कि बड़े-बड़े बुद्धिमान् भी धोखा खा जाते हैं, जैसे धनसारी के ठग। ये लोग पांच सात मिल के दूर-दूर देश में जाते हैं। जो शरीर से डौलडाल में अच्छा होता है उस को सिद्ध बना लेते हैं। जिस नगर वा ग्राम में धनाढ्य होते हैं उस के समीप जंगल में उस सिद्ध को बैठाते हैं। उसके साधक नगर में जाके अजान बनके जिस किसी को पूछते हैं—'तुम ने ऐसे महात्मा को यहां कहीं देखा वा नहीं? वे ऐसा सुनकर पूछते हैं कि वह महात्मा कौन और कैसा है?

साधक कहता है—बड़ा सिद्ध पुरुष है। मन की बातें बतला देता है। जो मुख से कहता है वह हो जाता है। बड़ा योगीराज है, उसके दर्शन के लिए हम अपने घर द्वार छोड़कर देखते फिरते हैं। मैंने किसी से सुना था कि वे महात्मा इधर की ओर आये हैं।

गृहस्थ कहता है—जब वह महात्मा तुम को मिले तो हम को भी कहना। दर्शन करेंगे और मन की बातें पूछेंगे। इसी प्रकार दिन भर नगर में फिरते और प्रत्येक को उस सिद्ध की बात कहकर रात्रि को इकट्ठे सिद्ध साधक होकर खाते पीते और सो रहते हैं। फिर भी प्रातःकाल नगर वा ग्राम में जाके उसी प्रकार दो तीन

दिन कहकर फिर चारों साधक किसी एक-एक धनाढ्य से बोलते हैं कि वह महात्मा मिल गये। तुम को दर्शन करना हो तो चलो। वे जब तैय्यार होते हैं तब साधक उन से पूछते हैं कि तुम क्या बात पूछना चाहते हो? हम से कहो। कोई पुत्र की इच्छा करता, कोई धन की, कोई रोग-निवारण की और कोई शत्रु के जीतने की। उन को वे साधक ले जाते हैं। सिद्ध साधकों ने जैसा संकेत किया होता है अर्थात् जिस को धन की इच्छा हो उस को दाहिनी, और जिस को पुत्र की इच्छा हो उसको सम्मुख, और जिस को रोग-निवारण की इच्छा हो उस को बाईं ओर और जिस को शत्रु जीतने की इच्छा हो उस को पीछे से ले जा के सामने वाले के बीच में बैठाते हैं। जब नमस्कार करते हैं उसी समय वह सिद्ध अपनी सिद्धाई की झपट से उच्च स्वर से बोलता है—'क्या यहां हमारे पास पुत्र रक्खे हैं जो तू पुत्र की इच्छा करके आया है? इसी प्रकार धन की इच्छा वाले से 'क्या यहां थैलियां रक्खी हैं जो धन की इच्छा करके आया है? 'फकीरों के पास धन कहां धरा है?' रोगवाले से 'क्या हम वैद्य हैं जो तू रोग छुड़ाने की इच्छा से आया? हम वैद्य नहीं जो तेरा रोग छुड़ावें; जा किसी वैद्य के पास' परन्तु जब उस का पिता रोगी हो तो उस का साधक अंगूठा; जो माता रोगी हो तो तर्जनी; जो भाई रोगी हो मध्यमा, जो स्त्री रोगी हो तो अनामिका; जो कन्या रोगी हो तो कनिष्ठिका अंगुली चला देता है। उस को देख वह सिद्ध कहता है कि तेरा पिता रोगी है। तेरी माता, तेरा भाई, तेरी स्त्री, और तेरी कन्या रोगी है। तब तो वे चारों के चारों बड़े मोहित हो जाते हैं। साधक लोग उन से कहते हैं—देखो! हम ने कहा था वैसे ही हैं वा नहीं?

गृहस्थ कहते हैं—हां जैसा तुमने कहा था वैसे ही हैं। तुम ने हमारा बड़ा उपकार किया और हमारा भी बड़ा भाग्योदय था जो ऐसे महात्मा मिले। जिस के दर्शन करके हम कृतार्थ हुए।

साधक कहता है—सुनो भाई! ये महात्मा मनोगामी हैं। यहां बहुत दिन रहने वाले नहीं। जो कुछ इन का आशीर्वाद लेना हो तो अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुकूल इन की तन, मन, धन से सेवा करो, क्योंकि 'सेवा से मेवा मिलती है।' जो किसी पर प्रसन्न हो गये तो जाने क्या वर दे दें। 'सन्तों की गति अपार है।' गृहस्थ ऐसे लल्लो-पत्तो की बातें सुनकर बड़े हर्ष से उनकी प्रशंसा करते हुए घर की ओर जाते हैं। साधक भी उनके साथ ही चले जाते हैं क्योंकि मार्ग में कोई उन का पाखण्ड खोल न देवे। उन धनाढ्यों का जो कोई मित्र मिला उस से प्रशंसा करते हैं। इसी प्रकार जो-जो साधकों के साथ जाते हैं उन-उन का वृत्तान्त सब कह देते हैं। जब नगर में हल्ला मचता है कि अमुक ठौर एक बड़े भारी सिद्ध आये हैं; चलो उन के पास। जब मेला का मेला जाकर बहुत से लोग पूछने लगते हैं कि महाराज! मेरे मन का वृत्तान्त कहिये। तब तो व्यवस्था के बिगड़ जाने से चुपचाप होकर मौन साध जाता है और कहता है कि हम को बहुत मत सताओ। तब तो झट उसके साधक भी कहने लग जाते हैं जो तुम इन को बहुत सताओगे तो चले जायेंगे और जो कोई बड़ा धनाढ्य होता है वह साधक को अलग बुला कर पूछता है कि हमारे मन की बात कहला दो तो हम सच मानें। साधक ने पूछा कि क्या बात है? धनाढ्य ने उस से कह दी। तब उस को उसी प्रकार के संकेत से ले जा के बैठाल देता है। उसे सिद्ध ने समझ के झट कह दिया, तब तो सब मेला भर ने सुन ली कि अहो ! बड़े ही सिद्ध पुरुष हैं। कोई मिठाई, कोई पैसा,

कोई रुपया, कोई अशर्फी, कोई कपड़ा और कोई सीधा सामग्री भेंट करता है। फिर जब तक मानता बहुत सी रही तब तक यथेष्ट लूट करते हैं और किन्हीं-किन्हीं दो एक **आंख के अन्धे गांठ के पूरों** को पुत्र होने का आशीर्वाद वा राख उठा के दे देता है और उस से सहस्रों रुपये लेकर कह देता है कि तेरी सच्ची भक्ति होगी तो तेरा पुत्र हो जायगा। इस प्रकार के बहुत से ठग होते हैं जिन को विद्वान् ही परीक्षा कर सकते हैं और कोई नहीं।

इसलिए वेदादि विद्या का पढ़ना, सत्संग करना होता है जिस से कोई उस को ठगाई में न फंसा सके। औरों को भी बचा सके क्योंकि मनुष्य का नेत्र विद्या ही है। विना विद्या शिक्षा के ज्ञान नहीं होता। जो बाल्यावस्था से उत्तम शिक्षा पाते हैं वे ही मनुष्य और विद्वान् होते हैं। जिन को कुसंग है वे दुष्ट पापी महामूर्ख हो कर बड़े दुःख पाते हैं। इसीलिये ज्ञान को विशेष कहा है कि जो जानता है वही मानता है।

न वेत्ति यो यस्य गुणप्रकर्षं स तस्य निन्दां सततं करोति ।
यथा किराती करिकुम्भजाता मुक्ताः परित्यज्य बिभर्ति गुञ्जाः॥

यह किसी कवि का श्लोक है।

जो जिस का गुण नहीं जानता वह उस की निन्दा निरन्तर करता है। जैसे जंगली भील गजमुक्ताओं को छोड़ गुञ्जा का हार पहिन लेता है वैसे ही जो पुरुष विद्वान्, ज्ञानी, धार्मिक सत्पुरुषों का संगी, योगी, पुरुषार्थी, जितेन्द्रिय सुशील होता है वही धर्मार्थ, काम, मोक्ष को प्राप्त होकर इस जन्म और परजन्म में सदा आनन्द में रहता है।

यह आर्यावर्त्तनिवासी लोगों के मत विषय में संक्षेप से लिखा है। इस के आगे जो थोड़ा सा आर्यराजाओं का इतिहास मिला है इस को सब सज्जनों को जनाने के लिये प्रकाशित किया जाता है।

अब आर्यावर्त्तदेशीय राजवंश कि जिस में श्रीमान् महाराज 'युधिष्ठिर' से लेके महाराज 'यशपाल' पर्यन्त हुए हैं उस इतिहास को लिखते हैं। और श्रीमान् महाराज 'स्वायम्भुव मनु जी' से लेके महाराजा 'युधिष्ठिर' पर्यन्त का इतिहास महाभारतादि में लिखा ही है और इस से सज्जन लोगों को इधर के कुछ इतिहास का वर्त्तमान विदित होगा। यद्यपि यह विषय विद्यार्थी सम्मिलित 'हरिश्चन्द्रचन्द्रिका' और 'मोहनचन्द्रिका' जो कि पाक्षिकपत्र श्रीनाथद्वारे से निकलता था जो राजपूताना देश मेवाड़ राज उदयपुर, चितौड़गढ़ में सब को विदित है; यह उस से हम ने अनुवाद किया है। **यदि ऐसे ही हमारे आर्य सज्जन लोग इतिहास और विद्या पुस्तकों का खोज कर प्रकाश करेंगे तो देश को बड़ा ही लाभ पहुंचेगा।** उस पत्र सम्पादक महाशय ने अपने मित्र से एक प्राचीन पुस्तक जो कि संवत् विक्रम के १७८२ (सत्रह सौ बयासी) का लिखा हुआ था, उस से ग्रहण कर अपने संवत् १९३९ मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष १९-२० किरण अर्थात् दो पाक्षिक-पत्रों में छापा है सो निम्न लिखे प्रमाणे जानिये।

आर्य्यावर्त्तदेशीय राजवंशावली

इन्द्रप्रस्थ में आर्य लोगों ने श्रीमन्महाराज 'यशपाल' पर्यन्त राज्य किया। जिन में श्रीमन्महाराजे 'युधिष्ठिर' से महाराजे 'यशपाल' तक वंश अर्थात् पीढ़ी अनुमान १२४ (एक सौ चौबीस राजा); वर्ष ४१५७, मास ९, दिन १४, समय में हुए हैं।

इनका ब्यौरा—

राजा	शक	वर्ष	मास	दिन
आर्यराजा	१२४	४१५७	९	१४

श्रीमन्महाराजे युधिष्ठिर वंश अनुमान पीढ़ी ३०, वर्ष १७७०, मास ११, दिन १० इनका विस्तार—

आर्यराजा	वर्ष	मास	दिन
१ राजा युधिष्ठिर	३६	८	२५
२ राजा परीक्षित	६०	०	०
३ राजा जनमेजय	८४	७	२३
४ राजा अश्वमेध	८२	८	२२
५ द्वितीयराम	८८	२	८
६ छत्रमल	८१	११	२७
७ चित्ररथ	७५	३	१८
८ दुष्टशैल्य	७५	१०	२४
९ राजा उग्रसेन	७८	७	२१
१० राजा शूरसेन	७८	७	२१
११ भुवनपति	६९	५	५
१२ रणजीत	६५	१०	४
१३ ऋक्षक	६४	७	४
१४ सुखदेव	६२	०	२४
१५ नरहरिदेव	५१	१०	२
१६ सुचिरथ	४२	११	२
१७ शूरसेन (दूसरा)	५८	१०	८
१८ पर्वतसेन	५५	८	१०
१९ मेधावी	५२	१०	१०
२० सोनचीर	५०	८	२१
२१ भीमदेव	४७	९	२०
२२ नृहरिदेव	४५	११	२३
२३ पूर्णमल	४४	८	७
२४ करदवी	४४	१०	८
२५ अलंमिक	५०	११	८
२६ उदयपाल	३८	९	०
२७ दुवनमल	४०	१०	२६
२८ दमात	३२	०	०
२९ भीमपाल	५८	५	८
३० क्षेमक	४८	११	२१

राजा क्षेमक के प्रधान विश्रवा ने क्षेमक राजा को मार कर राज्य किया। पीढ़ी १४, वर्ष ५००, मास ३, दिन १७ इनका विस्तार—

आर्यराजा	वर्ष	मास	दिन
१ विश्रवा	१७	३	२९
२ पुरसेनी	४२	८	२१
३ वीरसेनी	५२	१०	७
४ अनङ्गशायी	४७	८	२३
५ हरिजित	३५	९	१७
६ परमसेनी	४४	२	२३
७ सुखपाताल	३०	२	२१
८ कद्रुत	४२	९	२४
९ सज्ज	३२	२	१४
१० अमरचूड़	२७	३	१६
११ अमीपाल	२२	११	२५
१२ दशरथ	२५	४	१२
१३ वीरसाल	३१	८	११
१४ वीरसालसेन	४७	०	१४

राजा वीरसालसेन को वीरमहा प्रधान ने मार कर राज्य किया। वंश १६, वर्ष ४४५, मास ५, दिन ३, इनका विस्तार—

आर्यराजा	वर्ष	मास	दिन
१ राजा वीरमहा	३५	१०	८
२ अजितसिंह	२७	७	१९
३ सर्वदत्त	२८	३	१०
४ भुवनपति	१५	४	१०
५ वीरसेन	२१	२	१३
६ महीपाल	४०	८	७
७ शत्रुशाल	२६	४	३
८ संघराज	१७	२	१०
९ तेजपाल	२८	११	१०
१० माणिकचन्द	३७	७	२१
११ कामसेनी	४२	५	१०
१२ शत्रुमर्दन	८	११	१३

आर्यराजा	वर्ष	मास	दिन
१३ जीवनलोक	२८	९	१७
१४ हरिराव	२६	१०	२९
१५ वीरसेन (दूसरा)	३५	२	२०
१६ आदित्यकेतु	२३	११	१३

राजा आदित्यकेतु मगधदेश के राजा को 'धन्धर' नामक राजा प्रयाग के ने मार कर राज्य किया। वंशपीढ़ी ९, वर्ष ३७४, मास ११, दिन २६ इनका विस्तार—

आर्यराजा	वर्ष	मास	दिन
१ राजा धन्धर	४२	७	२४
२ महर्षि	४१	२	२९
३ सनरच्ची	५०	१०	१९
४ महायुद्ध	३०	३	८
५ दुरनाथ	२८	५	२५
६ जीवनराज	४५	२	५
७ रुद्रसेन	४७	४	२८
८ आरीलक	५२	१०	८
९ राजपाल	३६	०	०

राजा राजपाल को सामन्त महान्पाल ने मार कर राज्य किया। पीढ़ी १, वर्ष १४, मास ०, दिन ० इनका विस्तार नहीं है।

राजा महान्पाल के राज्य पर राजा विक्रमादित्य ने 'अवन्तिका' (उज्जैन) से चढ़ाई करके राजा महान्पाल को मार के राज्य किया। पीढ़ी १, वर्ष ९३, मास ०, दिन ० इन का विस्तार नहीं है।

राजा विक्रमादित्य को शालिवाहन का उमराव समुद्रपाल योगी पैठण के ने मार कर राज्य किया। पीढ़ी १६, वर्ष ३७२, मास ४, दिन २७ इन का विस्तार—

आर्यराजा	वर्ष	मास	दिन
१ समुद्रपाल	५४	२	२०
२ चन्द्रपाल	३६	५	४
३ सहायपाल	११	४	११
४ देवपाल	२७	१	२८
५ नरसिंहपाल	१८	०	२०
६ सामपाल	२७	१	१७
७ रघुपाल	२२	३	२५
८ गोविन्दपाल	२७	१	१७
९ अमृतपाल	३६	१०	१३
१० बलीपाल	१२	५	२७
११ महीपाल	१३	८	४
१२ हरीपाल	१४	८	४
१३ सीसपाल[1]	११	१०	१३
१४ मदनपाल	१७	१०	१९
१५ कर्मपाल	१६	२	२
१६ विक्रमपाल	२४	११	१३

राजा विक्रमपाल ने पश्चिम दिशा का राजा (मलुखचन्द बोहरा था) इन पर चढ़ाई करके मैदान में लड़ाई की इस लड़ाई में मलुखचन्द ने विक्रमपाल को मार कर इन्द्रप्रस्थ का राज्य किया। पीढ़ी १०, वर्ष १९१, मास १, दिन १६ इनका विस्तार—

आर्यराजा	वर्ष	मास	दिन
१ मलुखचन्द	५४	२	२०
२ विक्रमचन्द	१२	७	१२
३ अमीनचन्द[2]	१०	०	५
४ रामचन्द	१३	११	८
५ हरीचन्द	१४	९	२४
६ कल्याणचन्द	१०	५	४
७ भीमचन्द	१६	२	९
८ लोवचन्द	२६	३	२२
९ गोविन्दचन्द	३१	७	१२
१० रानी पद्मावती[3]	१	०	०

रानी पद्मावती मर गई। इसके पुत्र भी कोई नहीं था। इसलिये सब मुत्सद्दियों ने सलाह करके हरिप्रेम वैरागी को गद्दी पर बैठा के मुत्सद्दी राज्य करने लगे। पीढ़ी

---

१. किसी इतिहास में भीमपाल भी लिखा है।

२. इनका नाम कहीं मानकचन्द भी लिखा है।

३. यह पद्मावती गोविन्दचन्द की रानी थी।

४, वर्ष ५०, मास ०, दिन २१ हरिप्रेम का विस्तार—

आर्यराजा	वर्ष	मास	दिन
१ हरिप्रेम	७	५	१६
२ गोविन्दप्रेम	२०	२	८
३ गोपालप्रेम	१५	७	२८
४ महाबाहु	६	८	२९

राजा महाबाहु राज्य छोड़ के वन में तपश्चर्या करने लगे। यह बंगाल के राजा आधीसेन ने सुन के इन्द्रप्रस्थ में आके आप राज्य करने लगे। पीढ़ी १२, वर्ष १५१, मास ११, दिन २ इनका विस्तार—

आर्यराजा	वर्ष	मास	दिन
१ राजा आधीसेन	१८	५	२१
२ विलावलसेन	१२	४	२
३ केशवसेन	१५	७	१२
४ माधवसेन	१२	४	२
५ मयूरसेन	२०	११	२७
६ भीमसेन	५	१०	९
७ कल्याणसेन	४	८	२१
८ हरीसेन	१२	०	२५
९ क्षेमसेन	८	११	१५
१० नारायणसेन	२	२	२९
११ लक्ष्मीसेन	२६	१०	०
१२ दामोदरसेन	११	५	९

राजा दामोदरसेन ने अपने उमराव को बहुत दुःख दिया। इसलिए राजा के उमराव दीपसिंह ने सेना मिला के राजा के साथ लड़ाई की। उस लड़ाई में राजा को मार कर दीपसिंह आप राज्य करने लगे। पीढ़ी ६, वर्ष १०७, मास ६, दिन २२ इन का विस्तार—

आर्यराजा	वर्ष	मास	दिन
१ दीपसिंह	१७	१	२६
२ राजसिंह	१४	५	०
३ रणसिंह	९	८	११
४ नरसिंह	४५	०	१५
५ हरिसिंह	१३	२	२९
६ जीवनसिंह	८	०	१

राजा जीवनसिंह ने कुछ कारण के लिये अपनी सब सेना उत्तर दिशा को भेज दी। यह खबर पृथ्वीराज चह्वाण वैराट के राजा सुनकर जीवनसिंह के ऊपर चढ़ाई करके आये और लड़ाई में जीवनसिंह को मार कर इन्द्रप्रस्थ का राज्य किया। पीढ़ी ५, वर्ष ८६, मास ०, दिन २० इनका विस्तार—

आर्यराजा	वर्ष	मास	दिन
१ पृथिवीराज	१२	२	१९
२ अभयपाल	१४	५	१७
३ दुर्जनपाल	११	४	१४
४ उदयपाल	११	७	३
५ यशपाल	३६	४	२७

राजा यशपाल के ऊपर सुलतान शाहबुद्दीन गौरी गढ़ गजनी से चढ़ाई करके आया और राजा यशपाल को प्रयाग के किले में संवत् १२४९ साल में पकड़ कर कैद किया। पश्चात् 'इन्द्रप्रस्थ' अर्थात् दिल्ली का राज्य आप (सुलतान शहाबुद्दीन) करने लगा। पीढ़ी ५३, वर्ष ७४५, मास १, दिन १७ इन का विस्तार बहुत इतिहास पुस्तकों में लिखा है, इसलिए यहां नहीं लिखा।

इसके आगे बौद्ध जैनमत विषय में लिखा जायेगा।

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे सुभाषाविभूषित आर्यावर्त्तीयमतखण्डनमण्डनविषय एकादशः समुल्लासः सम्पूर्णः॥ ११॥